श्रीरामकृष्ण-विवेकानंद भावधारा की एकमात्र हिंदी मासिकी

वर्ष-११ अगस्त-१९९२ अंक-८

रामकृष्ण निलयम्, जयप्रकाश नगर, छपरा-८४१ ३०१ (बिहार)

विवेक शिखा के आजीवन सदस्य

९१. श्रीमती कमला घोष—इलाहाबाद
९२. श्री एस. डी. वर्मा—अहमदाबाद
९३. श्रीमती प्रभा भार्गव—बीकानेर (राजस्थान)
९४. श्री शशिकांत मिश्र—नारायणपुर (मध्य प्रदेश)
९५. श्री के० सी० सर्राफ—बम्बई
९६. श्री ए० के० चटर्जी, आइ. ए. एस.—पटना
९७ सचिव, थियोसोफिकल लॉज—छपरा (बिहार)
९८. श्री सुभाष वासुदेव—लुमडिंग (आसाम)
९९. श्री दिलीप देसाई, बरोदा (गुजरात)
१००. श्रीरामकृष्ण आश्रम—इन्दौर (म० प्र०)
१०१. सारदापीठ विद्यालय इन्दौर (म० प्र०)
१०२. डॉ० ओमप्रकाश वर्मा—रायपुर (म० प्र०)
१०३. विवेकानन्द विद्यापीठ—भोपाल (म० प्र०)
१०४ रामकृष्ण मठ—जामतारा (बिहार)
१०५. श्री सुनील खण्डेलवाल—रायपुर (मध्य प्रदेश)
१०६. श्री बसन्त लाल गुप्ता—नागपुर (महाराष्ट्र)
१०७. श्री जयेश ब्रह्मभट्ट—पुणे (महाराष्ट्र)
१०८. श्री नरेन्द्र कुमार टाक—अजमेर (राजस्थान)
१०९. श्री महन्त युक्तिरामजी—जोधपुर (राजस्थान)
११०. श्री राय महेन्द्र प्रसाद—जमशेदपुर (बिहार)
१११. कुमारी उषा हेगड़े—पुणे (महाराष्ट्र)
११२. श्री विनय प्रकाश—पुणे (महाराष्ट्र)
११३. डॉ० पी० सी० सिन्हा—रीवाँ (मध्य प्रदेश)
११४. डॉ० एच० पी० सिंह—रीवाँ (मध्य प्रदेश,
११५. मानस समिति, लुमडिंग (आसाम)
११६. श्रीरामचन्द्र गुप्त, लुमडिंग (आसाम)
११७. श्री चन्द्रकान्त स० नागपुरे (नागपुर)
११८. श्री अच्छे लाल श्रीवास्तव (उ० प्र०)
११९. संत जगदम्बिका (प्रयाग)
१२०. श्री अजय बलदवा, जयपुर (आसाम)
१२१. श्री बी० एस० दुबे, पुणे (महाराष्ट्र)
१२२. श्री शालीराम शर्मा, लुमडिंग (आसाम)
१२३. श्रीमती चन्द्रिका कालरा (बम्बई)
१२४ श्रीरामकृष्ण आश्रम, श्रीनगर (कश्मीर)
१२५. श्रीमती छवि सिंह, गाजीपुर (उ० प्र०)
१२६. विवेकानन्द युवा महामंडल, इन्दौर (म० प्र०)
१२७. श्री आनन्द यश चोपड़ा, अलॉग (अरुणाचल प्रदेश)

इस अंक में

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत

उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किए बिना विश्राम मत लो

विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष—११ १९९२—अगस्त अंक—८

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखती अविचल विमल 'विवेक शिखा'॥

संपादक :

डॉ० केदारनाथ लाभ

संपादकीय कार्यालय

रामकृष्ण निलयम्

जयप्रकाश नगर,

छपरा—८४१३०१

(बिहार)

फोन। ०६१५२-२६३९

सहयोग राशि

आजीवन सदस्य—	५०० रु०
वार्षिक—	३० रु०
रजिस्टर्ड डाक से—	४५ रु०
एक प्रति—	४ रु०

रचनाएँ एवं सहयोग-राशि संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजने की कृपा करें।

श्रीरामकृष्ण ने कहा है

(१)

किसी एक पर विश्वास रखने से काम हो जायगा। निराकार पर विश्वास करते हो, अच्छा है। पर यह न कहना कि यही सत्य है, और सब झूठ। यह समझना कि निराकार भी सत्य है और साकार भी सत्य है। जिस पर तुम्हारा विश्वास हो उसी को पकड़े रहो।

(२)

बिना भगवद्-भक्ति पाये यदि संसार में रहोगे तो दिनोंदिन उलझनों में फँसते जाओगे और यहाँ तक फँस जाओगे कि फिर पिण्ड छुड़ाना कठिन होगा। रोग, शोक, तापादि से अधीर हो जाओगे। विषय-चिन्तन जितना ही करोगे, आसक्ति भी उतनी ही अधिक बढ़ेगी।

(३)

बद्ध जीव संसार के कामिनी-कांचन में फँसे हैं। उनके हाथ पैर बँधे हैं; किन्तु फिर भी वे सोचते हैं कि संसार में कामिनी-कांचन में ही सुख है और यहाँ हम निर्भय हैं। वे नहीं जानते, इन्हीं में उनकी मृत्यु होगी। बद्ध जीव जब मरता है, तब उसकी स्त्री कहती है, 'तुम तो चले, पर मेरे लिए क्या कर गये ?' माया भी ऐसी होती है कि बद्ध जीव पड़ा तो है मृत्यु शय्या पर, पर चिराग में ज्यादा बत्ती जलती हुई देखकर कहता है, 'तेल बहुत जल रहा है, बत्ती कम करो !'

श्रीरामकृष्ण के प्रिय भजन

मम हृद् वृंदावन में

मूल बँगला भजन

(राग—अलहिया : ताल—दादरा)

पड़िये भवसागरे
डुबे मा तनुर तरी।
माया-झड़ मोह-तुफान
क्रमे वाड़े गो शंकरी ॥ ध्रु० ॥

एके मन-माछि आनाड़ि,
ताहे छजना गोंवार दाँड़ि।
कुवातासे दिये पाड़ि
हाबुडुबु खेये मरि ॥ १ ॥

भेंगे गेलो भक्तिर हाल,
छिड़े पड़लो श्रद्धार पाल।
तरी होतो वानचाल
उपाय कि करि ॥ २ ॥

उपाय ना देखि आर,
अकिंचन भेवे सार।
तरंगे दिये साँतार
श्री दुर्गानामेर भेला धार ॥ ३ ॥

(—अज्ञान)

भावानुवाद

(राग—अलहिया बिलावल। ताल—कहरया)

पड़कर इस भवसागर में
है डूब रही तन की नैया।
माया-पवन मोह-तूफान
अब बढ़ता ही जावे मैया ॥

मन-मल्लाह अनाड़ी है,
फिर डाँड़ खे रहे गँवार हैं।
विपरीत हवा में चलके
मैं डूब मरूँ! कौन बचैया?

टूटा जाय भक्ति-पतवार,
फटा जाये श्रद्धा का पाल।
डूब चली है नाव, कहो
अब कौन उपाय करूँ मैया ॥

ना सूझे एक भी उपाय
मरूँ सोचता मैं असहाय
लहरों में कूद पकड़ लूँ तब
मातृनाम-बेढ़ा मैया ॥

(—सारदातनय)

लक्ष्य और उसकी प्राप्ति के उपाय

—स्वामी विवेकानन्द

यदि सभी मनुष्य एक ही धर्म, उपासना की एक ही सार्वजनीन पद्धति, और नैतिकता से एक हो आदर्श को स्वीकार कर लें, तो संसार के लिए यह बड़े ही दुर्भाग्य की बात होगी। इससे सभी धार्मिक और आध्यात्मिक उन्नति को प्राणान्तक आघात पहुँचेगा। अतः हमें चाहिए कि अच्छे या बुरे उपायों द्वारा दूसरों को अपने धर्म और सत्य के उच्चतम आदर्श पर लाने की चेष्टा करने के बदले, हम उनकी वे सब बाधाएँ हटा देने का प्रयत्न करें जो उनके निजी धर्म के उच्चतम आदर्शो के अनुसार विकास में रोड़े अटकाती हैं, और इस तरह उन लोगों की चेष्टाएँ विफल कर दें जो एक सार्वजनीन धर्म की स्थापना का प्रयत्न करते हैं।

समस्त मानव जाति का, समस्त धर्मों का चरम लक्ष्य एक ही है, और वह है भगवान से पुर्नमिलन अथवा दूसरे शब्दों में उस ईश्वरीय स्वरूप की प्राप्ति, जो प्रत्येक मनुष्य का प्रकृत स्वभाव है। परन्तु यद्धपि लक्ष्य एक ही है, तो भी लोगों के विभिन्न स्वभावों के अनुसार उसकी प्राप्ति के साधन भिन्न-भिन्न हो सकते हैं।

लक्ष्य और उसकी प्राप्ति के साधनों—इन दोनों को मिलाकर 'योग' कहा जाता है। 'योग' शब्द संस्कृत के उसी धातु से व्युत्पन्न हुआ है, जिससे अंग्रेजी शब्द 'योक' (Yoke)—जिसका अर्थ होता है जोड़ना, अर्थात् अपने को उस परमात्मा से जोड़ना, जो कि हमारा प्रकृत स्वरूप है। इस प्रकार के योग अथवा मिलन के साधन कई हैं, पर उनमें मुख्य हैं कर्मयोग, भक्तियोग, राजयोग और ज्ञानयोग।

प्रत्येक मनुष्य का विकास उसके अपने स्वाभावानुसार ही होना चाहिए। जिस प्रकार हर एक विज्ञानशास्त्र के अपने अलग-अलग तरीके होते हैं, उसी प्रकार प्रत्येक धर्म में भी है। धर्म के चरम लक्ष्य की प्राप्ति के तरीकों या साधनों को हम योग कहते हैं। विभिन्न प्रकृतियों और स्वभावों के अनुसार योग के भी विभिन्न प्रकार है। उनके निम्नलिखित चार विभाग हैं—

1. **कर्मयोग :**—इसके अनुसार मनुष्य कर्म और कर्त्तव्य के द्वारा अपने ईश्वरीय स्वरूप की अनुभूति करता है।
2. **भक्तियोग :**—इसके अनुसार अपने ईश्वरीय स्वरूप की अनुभूति सगुण ईश्वर के प्रति भक्ति और प्रेम के द्वारा होती है।
3. **राजयोग :**—इसके अनुसार मनुष्य अपने ईश्वरीय स्वरूप वी अनुभूति मनःसंयम के द्वारा करता है।
4. **ज्ञानयोग :**—इसके अनुसार अपने ईश्वरीय स्वरूप की अनुभूति ज्ञान के द्वारा होती है।

ये सब एक ही केन्द्र—भगवान्—की ओर ले जाने वाले विभिन्न मार्ग हैं। वास्तव में, धर्म-मतों की विभिन्नता लाभदायक है, क्योंकि मनुष्य को धार्मिक जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा वे सभी देते हैं और इसी कारण सभी अच्छे हैं। जितने ही अधिक सम्प्रदाय होते हैं, मनुष्य की भगवद्भावना को सफलतापूर्वक जाग्रत करने के उतने ही अधिक सुयोग मिलते हैं।

(वि. सा. ३/१६९-७०

आनन्द की खोज

स्वामी ब्रह्मेशानन्द

जीवन का लक्ष्य :

स्वामी विवेकानन्द अपने "कर्मयोग" के प्रथम अध्याय में स्पष्ट रूप से कहते हैं कि मानव जाति का लक्ष्य ज्ञान है, सुख नहीं। सुख और आनन्द अनित्य है, शाश्वत नहीं है, और सुख को जीवन का लक्ष्य समझना भूल है। भारतीय दर्शन में सर्वत्र ही ज्ञान, मोक्ष, कैवल्य आदि को जीवन के लक्ष्य के रूप में प्रस्तुत किया गया है। पातंजल योग सूत्र के अनुसार कैवल्य या स्वरूपावस्थिति योग का उद्देश्य है, तथा उससे क्लेश निवृत्ति होती है। मोक्ष का अर्थ भी अज्ञान तथा उससे उत्पन्न संसार बन्धन से मुक्ति है। उपनिषदों में अन्यत्र अमरत्व को जीवन के लक्ष्य के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इन बातों से भ्रम हो जाता है कि निराशावादी भारतीय दर्शन दुःख और उसकी आत्यन्तिक निवृत्ति को ही जीवन का लक्ष्य मानता है, तथा उसमें सुख, आनन्द जैसा कोई सकारात्मक पक्ष विद्यमान नहीं है।

इससे भिन्न पाश्चात्य दर्शनों में सुख प्राप्ति को जीवन के लक्ष्य के रूप में अधिक महत्व दिया गया है। हीडोनिज्म एक प्रकार का चार्वाक दर्शन है जो सुख को जीवन का आदर्श, तथा जो वस्तु या क्रिया सुख प्रदान करे उसे शुभ मानता है। इस सुख की अनुभूति प्रत्येक के वैयक्तिक अनुभव के अनुसार ही आंकी जा सकती है। पाश्चात्य दार्शनिक इपिक्यूरियस मानते हैं कि ऐसा सुख ही स्वीकार्य है जो अन्त में दुःख प्रदान न करे, अतः सुख प्राप्ति के लिए दूरदर्शिता, मित्रता, साहस, भयहीनता आदि विभिन्न गुणों की भी आवश्यकता है। महान् दार्शनिक अरस्तू (Aristotlee)) के अनुसार व्यक्तिगत अनुभव मात्र सुख एवं उसकी प्राप्ति के लिए किये गये कार्य के औचित्य का मापदण्ड नहीं हो सकता। उदाहरण के लिए मधुमेह के एक रोगी को मिठाई खाना भले ही सुख प्रदान करे, पर वह उसका अकल्याण करेगा। अतः ऐसा सुख ही लक्ष्य हो सकता है जो संयम सदाचरण एवं सच्चरित्र से प्राप्त हुआ हो।

थोड़े से गहरे अध्ययन से यह स्पष्ट हो जायेगा कि भारतीय दर्शन में भी सुख एवं आनन्द के विषय में विशद विचार किया गया है। उपनिषदों में श्रेय एवं प्रेय को पृथक बताया गया है। जो हमें सुख प्रदान करे वह प्रेय है, और जो कल्याणकारी है वह श्रेय है। गीता के अष्टादश अध्याय में तीन प्रकार के सुखों का विवेचन करते हुए इस बात को और भी स्पष्ट किया गया है :

यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम्।
तत्सुखं सात्विकं प्रोक्तमात्मबुद्धिप्रसादजम् ॥३७

विषयेन्द्रिय संयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतोपमम्।
परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम् ॥३८

यदग्रे चानुबन्धे च सुखं मोहनमात्मनः।
निद्रालस्य प्रमादोत्थं तत्तामसमुदाहृतम् ॥३९

सात्विक, राजासिक व तामसिक तीन प्रकार के सुख हैं। सात्विक सुख प्रारम्भ में विष के समान अप्रिय होता है, लेकिन अन्त में अमृततुल्य होता है। राजसिक सुख प्रारम्भ में सुखप्रद लेकिम परिणाम में दुःखदायक होता है, विषयेन्द्रिय संयोग से उत्पन्न सभी सुख इस श्रेणी में आते हैं। निद्रा और आलस्य से प्राप्त सुख से अज्ञान, मोहबन्धन की वृद्धि ही होती है।

गीता के अनुसार चित्तवृत्ति निरोध के द्वारा प्राप्त आत्यन्तिक सुख ही सर्वोत्कृष्ट है। तथा वही जीवन का लक्ष्य भी है।

सुखमात्यंतिकं यत्तद बुद्धि ग्राह्यमतीन्द्रियम् ।
वेत्ति यत्र न चैवायं स्थियश्चलति तत्वतः ।।
यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः ।
यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणाऽपि विचाल्यते ।।

आत्म दर्शन के द्वारा प्राप्त आत्यन्तिक सुख बुद्धि इन्द्रियों के परे का अनुभव है, तथा एक बार होने पर योगी उससे विचलित नहीं होता। न ही उसे अधिक किसी लाभ की वह स्पृहा करता है और न ही गुरुतर दुःख से भी विचलित होता है। गीता और उपनिषदों के इन उपदेशों से यह स्पष्ट हो जाता है कि ज्ञान अथवा अमरत्व के साथ-ही-साथ भारतीय दर्शन आनन्द या आत्यन्तिक सुख को भी मानव जीवन के उद्देश्य के रूप में स्वीकार करता है। वस्तुतः सत्. चित्, आनन्द या अस्ति, भाति व प्रिय, सत्यं, शिवं, सुन्दरं, ये तीनों एक ही सत्ता के तीन पक्ष हैं। जो ज्ञान है, वही आनन्द भी है, और जो नित्य है वह भी आनन्द है। ये तीनों हमारी आत्मा के ही स्वरूप हैं। ये तीनों पृथक् नहीं हैं। एक ही है, केवल व्यवहार में शब्दों के प्रयोग के कारण उसमें पार्थक्य सा प्रतीत होता है। अपने आत्मस्वरूप का आनन्दमय स्वरूप का साक्षात्कार करना ही जीवन का लक्ष्य है। उसके बिना शाश्वत सुख या शान्ति की प्राप्ति नहीं हो सकती

एकोवशीसर्वभूतान्तरात्मा
एकं रूपं बहुधा यः करोति ।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीराः
तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम् ।।
नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानां,
एको बहूनां यो विदधाति कामान् ।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीराः,
तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम् ।।

इसी शाश्वत्, आत्यन्तिक एवं अवर्णनीय सुख का आस्वादन सभी सन्तों एवं अवतारी महापुरुषों को होता है। बुद्ध का दर्शन दुःख एवं उसकी निवृत्ति पर आधारित है। लेकिन निर्वाण केवल निवृत्ति की एक अभावात्मक स्थिति मात्र नहीं है, यह बात स्वयं उनके निर्वाण से सिद्ध होती है। कहा जाता है कि बोधि प्राप्त होने पर भगवान बुद्ध सात दिन और सात रात तक उसके आनन्द में विभोर रहे थे। ईसाई संत असिसि के संत फ्रांसिस ने ईसा मसीह की सूलीन पर पीड़ा का ध्यान किया था, जिसके फलस्वरूप उनके हाथ-पैरों में कीलों के घाव हो गये थे। पीड़ा के उपासक सन्त फ्रांसिस को एक बार दैवी वाद्य का स्वर सुनाई दिया। वह इतना मधुर, इतना आनन्ददायक था कि उसकी एक ध्वनि ने ही उन्हें आनन्द विभोर कर दिया। वे कहते थे कि अगर थोड़ी देर और वे उसे सुनते तो उनके प्राण ही निकल जाते। श्रीरामकृष्ण तो सदानन्दमय पुरुष ही थे। जब किसी व्यक्ति ने गाया "यह संसार धोखे की टट्टी है" तो श्रीरामकृष्ण ने उसे रोकते हुए कहा नहीं, "यह संसार आनन्द की कुटिया है।"

विभिन्न प्रकार के सुख :

उपर्युक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि सुख, आनन्द, शान्ति सभी चाहते हैं, चाहे वे जड़वादी, चार्वाक हों या धार्मिक, आस्तिक अथवा वेदान्ती और यह भी निश्चित है कि संसार के सभी प्राणियों को किसी-न-किसी प्रकार का, तथा किसी-न-किसी मात्रा में सुख प्राप्त होता है, अन्यथा अगर जीवन में केवल दुःख-ही-दुःख-हो तो जीवन सम्भव न हो। आइए विभिन्न प्रकार के सुखों का विश्लेषण करके सुख का वास्तविक स्वरूप, तथा उसकी प्राप्ति के उपायों को समझने का प्रयत्न करें। यों तो सभी प्राणियों को सुख प्राप्त होता है, लेकिन शास्त्रकारों ने अति मूढ़ बालक, विवेकियों में महाराज, तथा अतिविवेकियों में महाब्रह्म या ज्ञानी व्यक्तियों को श्रेष्ठ माना है। लोक में इन तीनों का सुख प्रसिद्ध हैं। अन्य व्यक्तियों का सुख इनकी तुलना में नगण्य है।

बालक का सुख :

छोटा बच्चा सदा आनन्दमय रहता है। माँ का दूध पीता है और किलकारी किया करता है। उसे जीवन के दुःखों का कोई अनुभव नहीं रहता—उनसे वह अनभिज्ञ रहता है। न तो उसे भविष्य की चिन्ता होती है, और न भूतकाल की ग्लानि। सामाजिक विधि-निषेधों से भी वह परे होता है। श्रीरामकृष्ण कहते थे कि बालक तीन गुणों से परे होता है, वे उसे बाँध नहीं सकते। न ही वह राग-द्वेष से प्रभावित होता है। एक परमहंस ज्ञानी भी बालवत् होता है क्योंकि वह राग-द्वेष, सामाजिक विधि-निषेध तथा तीनों गुणों के अतीत हो जाता है। अतः उसका आनन्द अन्य सांसारिक लोगों से अधिक होता है। इस तरह बालक के सुख के अध्ययन से हम सुख के स्वरूप एवं उसमें बाधक कारणों को समझ सकते हैं। ज्ञानी और बालक के सुखों में समानता होते हुए भी अज्ञानी होने के कारण बालक का सुख स्थायी नहीं होता और उसके बड़े होने पर वह सुख भी कम होता जाता है।

विषयों का सुख :

इन्द्रिय विषय-भोगों का सुख पशु-पक्षी से लेकर मनुष्य-गन्धर्वों आदि सभी को उपलब्ध है। यौवनावस्था में इन्द्रियाँ एवं मन तेजपूर्ण एवं भोग करने में समर्थ होता है। अतः विषय सुखों के लिए यौवन ही उपयुक्त समय है। विषय भोगों में भी काम सुख सबसे अधिक माना जाता है। उपनिषद् में काम-सुख की उपमा देते हुऐ कहा गया है कि एक प्रेमी अपनी प्रिया के द्वारा आलिंगित होकर बाह्य संसार के विषय में कुछ नहीं जानता। उसी प्रकार निद्रा में भी जीव कुछ नहीं जानता। काम सुख को इसीलिए सबसे अधिक बताया गया है क्योंकि उसमें व्यक्ति कुछ क्षणों के लिए तीव्र एकाग्रता को प्राप्त करके बाह्य जगत् को पूरी तरह भूल जाता है। तात्पर्य यह है कि जहां भी तीव्र एकाग्रता होती है, वहीं सुख की अधिकता होती है। सुख और चित्त की एकाग्रता का सीधा सम्बन्ध है। पशुओं का सारा अस्तित्व इन्द्रियों में ही केन्द्रित रहता है, अतः उन्हें विषय सुख मानव से कहीं अधिक प्राप्त होता है। स्वामी विवेकानन्द कहा करते थे कि सूअर या कुत्ता जिस आनन्द और उत्साह के साथ भोजन करता है, उस उत्साह या तीव्रता के साथ कोई मनुष्य नहीं कर सकता। मानवों में जिस व्यक्ति में जितनी अधिक एकाग्रता होगी, उतना ही वह अधिक सुख का उपभोग कर सकेगा। तत्व चिन्तन या परमात्मा के चिन्तन से चित्त शुद्ध होता है, और उसकी एकाग्रता में भी वृद्धि होती है। ऐसा शुद्ध चित्त जिस किसी विषय में लगाया जाता है, वहीं पर तीव्रता से चिपक जाता है, तथा आपाततः आसक्त सा प्रतीत होता है। लेकिन परमार्थ चिन्तन में अभ्यस्त चित्त की विशेषता यह है कि वह इच्छानुसार विषय से घटाया भी जा सकता है। तात्पर्य यह है कि ऐसे चित्त में आसक्ति और अनासक्ति दोनों रहती हैं। आसक्ति से जहां सुख प्राप्त होता है वहीं आसक्ति दुःख का भी कारण होती है। लेकिन सात्विक मन में अनासक्ति की भी सामर्थ्य होने के कारण वह दुःखी नहीं होता। भगवान शिव का मन इसी अद्भुत विशेषता से सम्पन्न माना गया है। उसमें आसक्ति तथा एकाग्रता के साथ ही साथ अनासक्ति और वैराग्य का भी सामर्थ्य है। शिव जी के चित्त की तुलना सामान्य मानवों के चित्त से करते हुए कवि भर्तृहरि कहते हैं :

> "एकोरागी राजते प्रियतमादेहार्धधारी हरो
> नीरागीसुजनो विमुक्तललनासंगो न यस्मात् परः।
> दुर्वारस्मरबाणपन्नगविषव्याविद्धमुग्धो जनः
> शेषः काम विडम्बितान्न विषयान् भोक्तु न मोक्तु क्षमः।"

अर्थात् रागी पुरुषों में हर ही एक विराजते हैं, जिन्होंने प्रियतमा को अर्धांग के रूप में धारण कर रखा है। वैरागियों में ललनासंग से मुक्त उनसे महान भी कोई नहीं है। शेष सभी व्यक्ति कामदेव के बाण रूपी सर्प के विष से प्रभावित हो न तो भोग ही कर पाते हैं और न मुक्त ही हो पाते हैं। तात्पर्य यह है कि एकाग्रता और आसक्ति के कारण सुख प्राप्त होता है। यदि किसी अप्रिय विषय या वस्तु में भी मन को एकाग्र किया जाय तो धीरे-धीरे वह प्रिय लगने लगता है और सुख प्रदान करने लगता है।

उपनिषदों में कहा गया है कि संसार के सभी प्राणी परमात्मा के सुख के एक लेशमात्र से ही जीवित रहते हैं। विद्वानों का कथन है कि विषयों से जो सुख प्राप्त होता है वह वस्तुत: आत्मा का ही सुख है। वह विषयों में नहीं होता है। विषय प्राप्ति की इच्छा से, तथा उसको प्राप्त करने के प्रयत्न से मन चंचल बना रहता है, लेकिन विषय की प्राप्ति होने पर मन शान्त हो जाता है। उस सात्विक शान्त मन में आत्मा के आनन्द का प्रतिविम्ब पड़ता है, जो विषय सुख के रूप में जाना जाता है। वस्तुतः सुख तो आत्मा का ही होता है, लेकिन प्रतीत होता है कि विषयों ने सुख प्रदान किया।

महाराजा का सुख—तैत्तिरीयोपनिषद में ब्रह्मानन्द या आत्मानन्द की निरतिशयता समझाने के लिए मनुष्य से लेकर ब्रह्मा तक के विभिन्न आनन्दों का वर्णन किया गया है। मनुष्य के आनन्द का वर्णन करते हुए ऋषि कहते हैं :

"युवास्या त्साधु युवाध्यायकः।
आशिष्ठो दृदिष्ठो बलिष्ठः।
तस्येयं पृथिवी सर्वा वित्तस्य पूर्णास्यात्।
स एकः मानुष आनन्दः॥"

अर्थात् सज्जन स्वभाव, शिक्षित, बलवान एवं दृढ़ चरित्र वाले किसी युवक को यदि वित्त से पूर्ण इस सारी पृथ्वी का आधिपत्य प्राप्त हो, तो उसे जो आनन्द प्राप्त होगा, वह एक मनुष्य आनन्द माना जाय। मनुष्य-गन्धर्वों का आनन्द इससे शतगुणा है, देव गन्धर्वों का उससे शतगुणा। इस तरह पितृगणों, विविन्न प्रकार के देवताओं, इन्द्र, वृहस्पति, प्रजापति तथा ब्रह्मा के आनन्दों का वर्णन उत्तरोत्तर शतगुणा अधिक किया गया है। समस्त लौकिक पार्थिव कामनाओं की पूर्ति के कारण पृथ्वी के अधिपति का सुख सबसे अधिक होता है। लेकिन इसे प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करना पड़ता है, उसके नष्ट होने का भय सदा वना रहता है, तथा महाराजा को भी गन्धर्व-इन्द्रादि के सुख की आकांक्षा बनी रहती है। तुलसीदास जी ने ठीक ही कहा है :

धनहीन कहे धनवान सुखी,
धनवान कहे सुख राजा को भारी।
राजा कहे महाराजा को सुख,
महाराज कहे सुख इन्द्र को भारी।
इन्द्र कहे चतुरानन को सुख,
ब्रह्मा कहे सुख विष्णु को भारी।
तुलसीदास विचारि कहे,
हरिनाम बिना सब लोक दुखारी।

विद्वान का सुख—ऐसी बात नहीं की संसार के सभी व्यक्ति विषय सुख ही चाहते हैं। सभ्यता और संस्कृति के साथ ही साथ सुख के प्रकारों में भी परिवर्तन होता रहता है। व्यक्ति जितना ही सुसंस्कृत होगा विषयों में उसे उतना ही कम सुख प्राप्त होगा। शास्त्राध्ययन, गम्भीर चिन्तन, साहसिक गवेषणा आदि में ऐसे लोगों को अधिक सुख की अनुभूति होती है। विभिन्न कला और विज्ञानों का विकास सुसंस्कृत बनने का एक महत्वपूर्ण उपाय है। इन सभी प्रकार के आनन्दों में भी

आनन्द का कारण तीव्र एकाग्रता है। लेकिन विद्वत्ता शिक्षा विज्ञानादि के द्वारा प्राप्त आनन्द भी त्रुटि रहित नहीं है। उपनिषदों में नारद-सनत्कुमार के वार्तालाप का वर्णन है। नारद चतुर्वेद, वेदांग, तथा अन्यान्य अनेक विधाओं में पारंगत होकर भी सुखी नहीं थे। वे सनत्कुमार के पास अपने शोक से निवृत्ति पाने के लिए जाते हैं। शास्त्राध्ययन से पहले आध्यात्मिक, आधि दैविक और आधि भौतिक तापत्रय तो थे ही, शास्त्राध्ययन के बाद और समस्याएँ भी जुड़ गयीं। यथा शास्त्र याद रखने के लिए नित्य अभ्यास, विसस्मरण से दुख, कम प्रतिभा वाले से गर्व तथा अधिक प्रतिभा वाले से पराजय का भय आदि की समस्याएँ और जुड़ गयीं। तात्पर्य यह कि विद्वान भी निरतिशय—नित्य सुख का अनुभव नहीं कर पाते।

निद्रा एवं तूष्णीं स्थिति का सुख – निद्रा के के सुख का अनुभव संसार के सभी प्राणियों को, पशु-पक्षियों, धनी-निर्धन, मूर्ख-बुद्धिमान, पापी-पुण्यात्मा सभी को प्राप्त होता है। उस स्थिति में अन्धा अन्धा नहीं रहता, निर्धन, निर्धन नहीं रहता, दुखी पीड़ाग्रस्त व्यक्ति पीड़ाग्रस्त नहीं रहता। यही कारण है कि संसार के सभी प्राणी निद्रा का सुख पाना चाहते हैं। धनी से धनी व्यक्ति भी अनिद्रा का रोग होने पर नींद की गोलियां खाकर सोना चाहता है—उसे उसके धन से अधिक नींद की आवश्यकता महसूस होती है। विषय भोगों में डूबा हुआ व्यक्ति भी नींद चाहता है, और सांसारिक दुख कष्टों से पीड़ित व्यक्ति का तो निद्रा ही एकमात्र सहारा है।

सुख प्रदान करने की क्षमता के कारण एवं द्वन्द्वात्मक जगत् को पूरी तरह विस्मृत कर देने के कारण निद्रा का, जाग्रत एवं स्वप्नावस्था से भिन्न अपना एक वैशिष्ट्य है जिसके विषय में भारतीय मनीषियों ने गहराई से चिन्तन किया है। सोकर उठने पर व्यक्ति कहता है, "नाहं किञ्चिदवेदिषम् सुखमस्वाप्स्वम्।" अर्थात् मैं सुख से सोया था, तथा कुछ भी नहीं जानता था। अर्थात् निद्रा की स्थिति में एक आनन्द का भोक्ता रहता है, जो कहता है, मैं सुख से सोया था। वहां अज्ञान रहता है एवं सुख या आनन्द का अनुभव होता है। लेकिन ज्ञाता, ज्ञेय व ज्ञान की त्रिपुटी वहाँ नहीं रहती। विषय सुख में भोक्ता, भोग्य विषय तथा भोग की द्वैतात्मक त्रिपुटी बनी रहती है, लेकिन निद्रा में इसका तथा द्वैत का अभाव रहता है। यह त्रिपुटी जीव को क्लान्त कर देती है, यही कारण है कि व्यक्ति अधिक समय तक विषय भोग करने के बाद विश्राम करना चाहता है, तथा बड़े यत्न के साथ नरम शैया आदि तैयार करता है। शैया पर विश्राम कर उसे और अधिक सुख प्राप्त होता है, लेकिन वह भी पर्याप्त नहीं होता और वह गहरी नींद सोना चाहता है। निद्रा में वह सबकुछ भूल जाता है—वहाँ केवल अद्वैत रहता है। उपनिषदों में कहा गया है, "योवैभूमातत्सुखम्—नाल्पे सुखमस्ति।" अर्थात् जो भूमा या व्यापक है, उसमें सुख है, अल्प में सुख नहीं है। और "द्वितीया द्वै भयं भवति"। अर्थात् जहां दो होते हैं, वहाँ भय होता है। शास्त्रकारों का मत है कि निद्रावस्था में हम ब्रह्मानन्द का ही अनुभव करते हैं लेकिन वह अज्ञान से आवृत्त रहता है। वहां अज्ञान रूपी चित्तवृत्ति आनन्द अभिमुख होकर रहती है, तथा उस पर आत्मा का आनन्द प्रतिबिम्बित होता है।

निद्रा से जागने पर हम सहसा उठना नहीं चाहते हैं, थोड़े समय तक निद्रा के ठीक बाद की तूष्णी अथवा शान्त स्थिति में बैठे रहना चाहते हैं। निद्रा के ठीक बाद और ठीक पहले चित्त की ऐसी स्थिति होती है, कि न तो उसमें चित्त वृत्तियां उठती हैं और न ही मन अज्ञान द्वारा आवृत्त रहता

है। ऐसी स्थिति में भी व्यक्ति ब्रह्मानन्द का अनुभव करता है। वेदान्तियों का कथन है कि हमें इस तूष्णीं स्थिति को बनाए रखने का प्रयत्न करना चाहिए। निद्रा के पहले या बाद में ही नहीं बल्कि जीवन में कभी ऐसी स्थिति आवे जब सुन्दर प्राकृतिक दृश्य देखने, अथवा मधुर सुन्दर संगीत सुनने के कारण हमारा मन एकदम शान्त हो जाय, तब उस शान्त स्थिति को बनाए रखना चाहिए, क्योंकि ऐसी स्थिति में प्राप्त आनन्द साक्षात् ब्रह्मानुभूति का आनन्द न होते हुए भी उसके अत्यन्त निकट है।

श्रीरामकृष्ण तीन प्रकार के आनन्दों का उल्लेख किया करते थे: विषयानन्द, भजनानंद और ब्रह्मानन्द। विषयानन्द की अनुभूति आत्मा के आनन्द के कारण ही होती है, लेकिन यह बन्धन का कारण है। भगवान के नाम गुण कीर्तन तथा साधना से प्राप्त आनन्द में भी द्वैत बना रहता है, लेकिन यह बन्धन का कारण नहीं बल्कि धीरे-धीरे ब्रह्मानन्द की अनुभूति करवाकर मुक्ति प्रदान करता है। ब्रह्मानन्द में, अर्थात् जब समाधि की अवस्था में परमात्मा की अपरोक्ष अनुभूति होती है, उस समय के आनन्द का वर्णन नहीं किया जा सकता है। श्रीरामकृष्ण के अनुसार ब्रह्मानन्द का सुख शरीर के प्रत्येक रोमकूप में स्त्रीपुरुष के रमण सुख के बराबर होता है।

ब्रह्मज्ञानी का सुख—परमात्मा के अपरोक्षानुभव में संसार के सभी सुखों से अधिक सुख प्राप्त होता है। यही निरतिशय आनन्द सभी साधनाओं का लक्ष्य है। तैत्तिरीयोपनिषद में जहां मनुष्य आनन्द से प्रारंभ कर, गन्धर्व देवतादि के उत्तरोत्तर वर्धित आनन्दों का वर्णन करते हुए ब्रह्मा के आनन्द तक का वर्णन किया गया है, वहां पर यह भी कहा गया है कि ये सारे आनन्द अकामहत् श्रोत्रिय को भी प्राप्त होते हैं। "श्रोत्रियस्याकामहतस्य···।",

ब्रह्मज्ञानी चार कारणों से निरतिशय सुख प्राप्त करता है: दुःख निवृत्ति, सर्वकामाप्ति, कृतकृत्यता एवं प्राप्य प्राप्यता। वह स्थूल सूक्ष्म तथा कारण, तीनों प्रकारों के शरीरों को मिथ्या जानकर उनके साथके तादात्म्य अध्याय से निवृत्ति हो जाता है। अतः देह के व्याधि आदि दुःख को वह अपना नहीं समझता, न ही मन अथवा सूक्ष्म शरीर में उठ रहे काम-क्रोधादि को अपना समझता है। उसे पाप पुण्य की चिन्ता नहीं होती, और न वह परकाल के दुःखों को भोगता है, क्योंकि वह जानता है कि वह स्वयं अजन्मा नित्य आनन्द स्वरूप आत्मा है, जिसे धर्माधर्म स्पर्श नहीं कर सकते। उसके समस्त कर्म ज्ञान के द्वारा नष्ट हो जाते हैं। अतः उसके सभी इहलौविक तथा पारलौकिन दुःखों की निवृति हो जाती हैं।

अतृप्त कामनाएँ ही हमारे समस्त कष्टों का कारण है। ब्रह्मज्ञानी की सभी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। एक सार्वभौम राजा का किसी सेठ, अथवा मंत्री के, अथवा अन्य किसी सामान्य व्यक्ति के सुख की कामना नहीं होगी। क्योंकि उसके सार्वभौमत्व में उन सभी निम्न सुखों का अन्तर्भाव हो गया है। अतः राजा निम्न सुखों का त्याग करता है। विवेकी, ज्ञानी व्यक्ति भी सभी कामनाओं का त्याग करता है। भागकर नहीं बल्कि विवेक द्वारा। वह यह अनुभव करता है कि वह सभी देहों में विद्यमान अन्तर्यामी साक्षी आत्मा है, तथा सभी देहों के माध्यम से भोग कर रहा है। अतः वह पृथक भोगों की कामना नहीं करता। उसे यह भी अनुभव होता है कि वही अन्न बना है, तथा अन्नाद अथवा अन्न का भक्षण करने वाला भी। उससे भिन्न कोई भोग है ही कहां? वही तो सब कुछ हुआ है! अतः वह पूर्णरूप से निष्काम हो जाता है। निष्कामता में ही सर्वोच्च सुख है।

ज्ञानी के लिए करणीय कुछ नहीं रहता

(कृतकृत्यता)। पापकर्म में तो उसकी प्रवृत्ति होती हो नहीं। स्वर्गादि की इच्छा न होने के कारण पुण्य कर्म में भी प्रवृत्ति नहीं होती। उसे चित्त शुद्धि के लिए निष्कामकर्म की भी आवश्यकता नहीं रहती और न ही समाधि लगाने के लिए चित्तवृत्ति निरोध की। क्योंकि वह तो नित्य समाधि में विद्यमान रहता है।

और अप्राप्यवस्तु की प्राप्ति का प्रश्न तो तब उठता है जब हमसे भिन्न कोई वस्तु है। ज्ञानी जानता है कि वही एकमात्र सत्य है। उससे भिन्न कोई वस्तु है ही नहीं, तो फिर क्या प्राप्त करने की कामना करे। उसके लिए तो सबकुछ सदा प्राप्त ही है।

आनन्द प्राप्ति के उपाय—उपर्युक्त विश्लेषण से आनन्द के स्वरूप को समझने के उपरान्त उसकी प्राप्ति के उपायों को ढूढ़ना आसान हो जायेगा। आनन्द प्राप्ति के उपायों को जानने के पूर्व एक बात का उल्लेख करना आवश्यक प्रतीत होता है। सामान्यतः सुख, आनन्द, शान्ति, सन्तोष आदि शब्द पर्यायवाची के रूप में प्रयोग किये जाते हैं। प्रस्तुत लेख में भी इन शब्दों के अर्थों में भेद नहीं किया गया है तथा उनकी शाब्दिक व्याख्या नहीं की गयी है। इतना कहना पर्याप्त है कि मानव निरतिशय, नित्य, निरंतर सुख चाहता है। इस प्रकार के सुख के लिए कुछ लोग आनन्द शब्द का उपयोग अधिक पसन्द करते हैं और सुख को दुःख के विरोधी शब्द के रूप में उपयोग करते हैं। मानव के समस्त लौकिक, पारलौकिक अथवा आध्यात्मिक प्रयासों का उद्देश्य सुख दुःख से परे जाना हैं, तथा निरतिशय शाश्वत आनन्द प्राप्त करना है।

उपर्युक्त व्याख्या में आनन्द प्राप्ति के कुछ उपायों का उल्लेख किया ही जा चुका है। सर्व-प्रथम तो हमें उन सभी विचारधाराओं, प्रयासों, आदतों एवं अभ्यासों का त्याग करना होगा जो क्षणिक अथवा सामयिक सुख प्रदान करते हैं, लेकिन जो परिणाम में दुखदायी हैं। संसार के अनित्य विषय स्थायी सुख प्रदान नहीं कर सकते, यह समझ कर उनके प्रति आसक्ति एवं आकांक्षा का त्याग करना चाहिए। "आशा हि परमं दुःखं, नैराश्यं परमं सुखम्।" यह एक अमूल्य स्मरणीय सिद्धान्त है। विचार द्वारा संसार के सभी विषयों में दुःख एवं दोष दर्शन के द्वारा उनके प्रति आसक्ति दूर हो जाती है। यह प्रक्रिया अपने आप में महान लाभकारी है, तथा चित्त की चंचलता को कम करके उसे अधिक स्थिर एवं शान्त बनाती है।

शान्त, सत्त्वगुणी चित्त में आत्मा का आनन्द प्रतिविम्बित होता है। अतः योगाभ्यास एवं चित्त-वृत्ति निरोध के अभ्यास द्वारा चित्त को शान्त करने का प्रयास करना चाहिए। भगवान गीता में उस निरतिशय सुख की प्राप्ति का उपदेश देकर कहते हैं :

तं विद्यात् दुःख संयोग वियोग योग संज्ञितम्।
स निश्चयेन योक्तव्यो योगोऽनिर्वेणचेतसा ॥

यह योग दीर्घकाल तक निरन्तर, आदर एवं लगन द्वारा किये अभ्यास द्वारा सधता है। जैसा कि उल्लेख किया जा चुका है, एकाग्रता और सुख का सीधा सम्बन्ध है। अतः योग से एकाग्रता की वृद्धि के द्वारा हमारे जीवन में सुख की भी वृद्धि होती है।

यह भी कहा जा चुका है कि निद्रा के पूर्व अथवा निद्रा के ठीक बाद की तूष्णीं स्थिति में चित्तवृत्ति विरहित मन में चैतन्य आत्मा के आनंद

का प्रतिबिम्ब पड़ता है। इस स्थिति को बनाए रखने का प्रयत्न करना चाहिए। इसके अतिरिक्त अन्य समय भी मन के शान्त होने पर तूष्णीं स्थिति को बनाए रखना एक प्रकार की साधना है। लेकिन ध्यान रखना चाहिए कि तूष्णीं स्थिति बनाने के प्रयत्न में हम कहीं आलस्य या निद्रा में न डूब जायें। जैसा कि कहा जा चुका है, निद्रा में प्रगाढ़ आनन्द की प्राप्ति होती है, लेकिन वह अज्ञान से आवृत्त रहता है। निद्रा का आनन्द गीता के अनुसार तमोगुणी आनन्द है, जो बन्धन और मोह की वृद्धि का कारण होता है। हमारा लक्ष्य निद्रा के आनन्द को जाग्रतावस्था में प्राप्त करना है। तूष्णीं स्थिति के काल की वृद्धि तभी सम्भव है जब हम अपने सब कार्य पूर्ण सजगता एवं एकाग्रता से करें तथा तूष्णीं स्थिति में भी सजग बने रहें, अन्यथा हम, तमोगुण में डूब जायेंगे। जिनके लिए यह संभव नहीं होता है, उनके लिए सगुण साकार के ध्यान से प्रारम्भ कर सगुण निराकार तथा उसके बाद निर्गुण निराकार के ध्यान तक बढ़ना ही उचित है। उसके बाद वे क्रमशः सच्ची तथा दीर्घ तूष्णीं स्थिति प्राप्त करने में सफल होंगे।

आनन्द प्राप्ति का महत्वपूर्ण उपाय है भक्ति। हमारा स्थूल मन जब तक रूप रसादि के प्रति आसक्त है, तब तक उस ईश्वर के किसी प्रिय रूप एवं नाम का रसपान करना चाहिए। परमात्मा हमारे अतिप्रिय हैं, यह जानकर उसका ध्यान करने से अत्यन्त आनन्द की प्राप्ति होती है। भक्ति के द्वारा चित्त शुद्ध होता है और ज्यों-ज्यों चित्त शुद्ध होगा अधिकाधिक आनन्द का अनुभव होगा।

ज्ञान मार्ग अथवा विचार मार्ग के द्वारा भी आनन्द की प्राप्ति की जा सकती है। मैं आनन्द स्वरूप चैतन्य आत्मा हूँ, यह जानने पर ही कृत कृत्यता संभव है। अतः विवेक विचार द्वारा स्वयं के आत्म स्वरूप को जानना ही शाश्वत आनन्द प्राप्ति का उपाय है। मानव धन, सम्पत्ति, पुत्र, स्त्री, स्वयं की देह आदि सभी से प्रेम करता है लेकिन अपनी आत्मा से सबसे अधिक प्रेम करता है। और जो हमें सुख प्रदान करता है वही प्रिय भी होता है। अतः यह सिद्ध हुआ कि परम प्रेमास्पद होने के कारण आत्मा ही सबसे अधिक सुख प्रदान करता है। वह सुख स्वरूप ही है।

पुत्र की रक्षा के लिए व्यक्ति अतिप्रिय धन को खर्च करने में नहीं हिचकता। यदि पुत्र मारने आए तो व्यक्ति अपनी रक्षा पहले करता है जिससे यह सिद्ध होता है कि पुत्र से हमारी देह अधिक प्यारी है। स्थूल देह से भी इन्द्रियाँ अधिक प्यारी है— क्योंकि यदि कोई आँख फोड़ना चाहे तो हम हाथ आदि द्वारा उसकी रक्षा करने का प्रयत्न करते हैं। इन्द्रियों से प्राण अधिक प्यारे हैं, क्योंकि यदि किसी अंग या इन्द्रिय में ऐसा रोग हो जावे जो प्राण संकट उपस्थित कर दें, तो हम प्राण रक्षा के लिए उस अंग विशेष का आपरेशन आदि से त्याग करने में भी नहीं हिचकते। प्राण से भी मनप्रिय है, क्योंकि व्यक्ति अपने विचारों, आदर्शों के लिए प्राण त्याग करने में भी नहीं हिचकते। इस तरह जो अन्तरतम तथा हमारी आत्मा के जितना निकट है, वह उतना ही अधिक प्रिय है। और हमारी आत्मा अन्तरतम है। अतः वह निरतिशय प्रेम का आस्पद—परम प्रेमास्पद हैं। यह बात ज्ञानीजनों के अनुभव से भी सिद्ध होती है। इस प्रकार विचार द्वारा आत्मा में प्रियतमत्व स्थापित करना आत्मसाक्षात्कार की प्रक्रिया तथा परमानन्द प्राप्ति का उपाय है।

उपसंहार—शास्त्रों का उद्घोष तथा विद्वजनों का अनुभव है कि इस संसार में शाश्वत् सुख सम्भव नहीं है। सुख केवल परमात्मा में है, भूमा में है, अद्वैत में है। उस परम सत्ता का जो हमारा आत्मा है, योग ज्ञान अथवा भक्ति के द्वारा साक्षात्कार कर, परमानन्द के अधिकारी बनकर हम धन्य हो जायें। यही मानव जीवन का लक्ष्य एवं प्रयोजन है, तथा इसीमें उसकी सार्थकता भी है।

२१ अगस्त, कृष्ण जन्माष्टमी पर

कृष्ण पूर्ण पुरुष हैं

—डॉ० रमाकान्त पांडेय

कृष्ण का सारा जीवन ज्योति का महाकाव्य है। उनकी सम्पूर्ण लीला विराट समष्टिके महाप्राण का मुक्तक है। शब्दों में निर्वात व्योम का स्वर है। भाषा में परावाक् का निर्बन्ध छलकाव है और चिन्तन में अतिमानसिक सत्ता का मुक्त छन्द है। अंग-अंग में जामुनी आग का जादू है। भाव-भंगिमा में सुदूर नीहारिका के नील नक्षत्र का सम्मोहन है। कृष्ण के समूचे क्रिया-कलाप में इतनी लचक लोच है, इतना अनुपम लालित्य है कि लगता है जैसे एकान्त अनन्त का इतना रसाल पल्लवन लेकर ब्रह्म कभी धरती पर उतरा ही नहीं। उनकी हल्की-सी मुस्कुराहट भूमा की भैरवी हो जाती है। एक नन्हीं सी बांकी बनैली चितवन से पूरे मधुवन में वेला की कलियाँ चटक जाती हैं और सारे परिवेश में ताजी अनसुंघी सुगन्धि बिखर जाती है। अरुण अधरों पर बांसुरी की मीठी तान उठती हैं और प्रकृति के प्राणों का मृणाल-तंतु झंकृत हो जाता है। नटखट कान्हा की सारी विधाओं में नागर शैली का इतना गहन संपुट है कि द्वन्द्व समास में भी तत्पुरुष का भाव भर जाता है और अनायास किसी अनाम आकुलता को अचल सुख की प्रतिष्ठा मिल जाती है।

कृष्ण सचमुच पूर्ण पुरुष हैं। चुटकी भर माटी खाकर मुंह खोलते हैं तो यशोदा को उसी में सारा ब्रह्मांड घूमता दिखायी देता है और मां का स्नेहिल आवेश विस्मय में बदल जाता है। महाभारत के भयावह विपल्व के बीच भी उनकी सहज मुस्कान दर्शनीय है। कुरुक्षेत्र की युद्धभूमि में जब मित्र अर्जुन का गांडीव सरकने लगता है, देह कांपने लगती है, जीभ सूखने लगती है और गीता का सारा उपदेश व्यर्थ हो जाता है तब कृष्ण को एक बार फिर अपने विश्व-रूप का विस्तार प्रस्तुत करना पड़ता है। जिह्वा अग्निकी दिगन्तव्यापी लपट जैसी है, कराल दंत पंक्ति में असंख्य लाशें लिपटी हैं और मुख-विवर में सम्पूर्ण तारा मण्डल चक्कर काट रहा है। अर्जुन का पसीना छूटने लगता है और एक निरीह बालक की तरह पुकार उठते हैं— 'तदेव में दर्शय देव रूपं।'

पूर्णता का अर्थ है, सारी सृष्टि में सबके भीतर शून्यता की सिहरन की तरह व्याप्त हो जाना, हवा की हथेली से निःशब्द सरक जाना और शब्दों के अनुगुंजन में अनाहत मौन की तरह घुल जाना। जहां श्रुतियों के अक्षर अनुभूति के अन्तराल में विलीन हो जाते हैं और नाद-विन्दु की सारी संभावनाएं विराट के नृत्य में बदल जाती हैं, वहां पूर्णता का अर्थ प्रकट होता है। किसी बिन्दु-यात्रा का मात्र वृत्तीय होना पूर्णता नहीं है क्योंकि पूर्णता का मूल प्रश्न विभाओ (डायमेन्सन) से जुड़ा होता है। जिस प्रतिरूप के अन्तस् से अनन्त विभाओं की संभावना छलकती है, उसी में पूर्णता की निष्पति मानी जाती है। पूर्णता सृजन करती है, आंशिकता ग्रहण करती है। परिमा प्रभावित करती है, सम्पूर्णता अभिभूत कर लेती है। सीमा स्वभाव से न संकुचित होती है, अनन्त स्वतः अनावृत रहता है। इसीलिए पूर्णता को अनन्त भी मान लिया जाता है। जब सारी प्रकृति के प्राणिक स्वर से एक

ही प्रतिध्वनि उठती है और सबको लगता है कि सब कुछ उसी का है तब एक रसमयी संतृप्ति पूर्णता का परिचय देती है। कृष्ण सबको अपने ही प्राण-नीड़ के पंछी लगते हैं। लेकिन कृष्ण सबमें पूरी तरह बंटकर भी पूरी तरह बचे रह जाते हैं। जिसमें से सब कुछ निकाल लेनेपर भी सब कुछ शेष रह जाय उसे ही आर्य-प्रज्ञा पूर्णता की संज्ञा देती है।

जीवन का कोई आयाम कृष्ण से अछूता नहीं रहा है। रस-रास, सौन्दर्य-रहस्य और-माधुर्य की जितनी छवियां अकेले कृष्ण में प्रकट हुई हैं, उन्हें किसी और देश के देव पुरुष में देखना दूर की बात है। स्वयं राम के पास उपवन है, मधुवन नहीं है; जंगल की यात्रा है, वृन्दावन का नृत्य नहीं है; मर्यादा है, माधुर्य को रसधार नहीं है। शिव के पास साधना है, रासलीला नहीं है। समाधि है, उल्लास नहीं है, ताण्डव है, लास्य नहीं है। ईसा के पास उदासी है, फागुन का मृदंग नहीं है, कंधों पर सलीब है, अधरों पर बांसुरी नहीं है, हृदय में प्रेम है, उच्छल आनन्द नहीं है। मुहम्मद के जीवन में युद्ध है, यातना है, कुर्बानी है लेकिन कदम्ब की डालियों के झूले का सुख नहीं है। जरथुस्त्र के पास ज्ञान है, पावों में घुंघरु नहीं है। बुद्ध मौन-मुग्ध हैं, करुणा की मूर्ति हैं, लेकिन कभी ऐसा नहीं लगता कि किसी बात पर खिलखिलाकर हंस पड़ेंगे। महावीर की तपस्या अनूठी है और यहां तक कि उनके सिर पर पंछी घोंसला बना लेते हैं, लेकिन उनके जीवनमें संगीत और कलरव नहीं है। वैसे, सारे महापुरुष, प्रणम्य हैं, लेकिन कृष्ण तो बस अपने ही प्राण-बन्धु हैं।

कृष्ण जीवन की अनन्त संभावनाओं के कैवल्य-बिन्दु हैं। वे नदियों के कल-कल, वृक्षों के मर्मर स्वर, पक्षियों के गीत, तारों की रोशनी एवं जीवन के सारे नृत्य-संगीत और हास-विलास के उत्सव को धर्म की गरिमा प्रदान करते हैं। यही नहीं, कृष्ण नितान्त विपरीत स्थितियों के बीच ही उदात्त सामंजस्य की स्थापना करते चलते हैं और समग्रता की अविरोध स्वीकृति के प्रतीक बन जाते हैं। कृष्ण जितनी सहजता से गोपियों की नरम कलाई पकड़ लेते हैं, उतनी ही आसानी से कुवलयापीड़ की सूढ़ भी मरोड़ देते हैं। जितनी मीठी ढिठोली से ब्रज-बालाओं की मटकी फोड़ देते हैं, उतने ही अनाड़ी भाव से कानी अंगुरी पर गोवर्द्धन भी उठा लेते हैं। कृष्ण की जिन गूढ़ प्रेम से भरी आंखों में स्वर्गिक अनुराग के बिम्ब खिलते हैं, उन्हीं से भीषण आक्रोश की ज्वाला भी फूटती है। उनके जिन गुलाबी कोमल अधरों पर स्नेह की वंशी गूंजती है, उन्हीं पर रुद्र-विध्वंस का पांचजन्य भी बजता है। वे जितनी मोहक मुद्रा में वृन्दावन के हरित कुंजों में संगीत की सरस तान छेड़ते हैं, उतने कौशल से कालिया नाग के मस्तक पर मुग्ध नृत्य भी करते हैं। जो उंगलियां गोपियों के मसृण शृंगार पर मदिर अभिसार का संकेत बुनती हैं, उन्हीं में सुदर्शन चक्र का क्रूर आवर्त भी चलता है। चीर चुराकर कदम्ब की डाल पर बैठे प्राकृत नग्नता का निवेदन करने वाले कृष्ण द्रौपदी की कौरव सभा में नंगी होने से बचाने के लिए इतनी अछोर साड़ी देते हैं जिसे खींचने में दुःशासन की बांहें थक जाती हैं और सभी भौंचक होकर सोचने लगते हैं—'नारी बीच सारी है, कि सारी बीच नारी है।'

कृष्ण कॉस्मिक नृत्य को धर्म बना लेते वाले पहले पुरुष हैं। नृत्य देवत्व की लोक-शैली है। गहरे अर्थों में सारी सृष्टि कृष्ण तत्व के नृत्य सौंदर्य का रूपान्तरण है कृष्ण का कालिय नाग के फन पर नाचना ऊर्ध्व आकाश के अन्ध-सागर की लहरों में लहर उठने जैसा है। स्याह सर्प की दैत्यकार देह और उसके फन पर फैली मृत्यु की भयावह छाया में नन्हें मुस्काते कान्हा का ताल-नृत्य ब्रह्मांड का सारा रहस्य खोल देता है। यही कि सम्पूर्ण सृष्टि में कृष्ण की लीला के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है।

'लहाछेह' नृत्य की तीव्र तरंगों में कृष्ण प्रकाश के उस पार चले जाते हैं जहां किसी कण का कम्पन प्रकाश की गति से कम नहीं होता। ब्रह्मांड में सारा रस गति की लयात्मक तरलता से टपकता है और गति जब अपनी चरम स्थिति के पार चली जाती है तब वह आनन्द का चिरन्तन भाव बन जाती है जिसे 'परम पद' की संज्ञा दी जाती है। यह क्षण मन के 'निमंन' या 'भाति' के प्रीतिपूर्वक 'अस्ति' हो जाने का होता है। योगीजन इसे समाधि भी कहते हैं। कृष्ण इसी अवस्था के प्रत्यक्ष भाव-पुरुष हैं -सारे प्रपंच से परे, सारी परिभाषाओं से दूर, शब्दों के शिखर पर ठहरे मौन की तरह शान्त और पूर्ण !

(दैनिक आज, पटना से साभार-सं)

विवेक शिखा—स्थायी कोष के दाता

११. श्री रामलायक सिंह	—	सम्होता (छपरा)	२५ रुपये
१२. डा० एस पी० भार्गव	—	अजमेर	१०० रुपये
१३. श्री राम छविला सिंह	—	मुजफ्फरपुर	२५ रुपये
१४. श्री निखिल शिवहरे	—	दमोह (म० प्र०)	१५१ रुपये
१५. श्रीमती उषारानी कर्ण	—	सुरसंड, (सीतामढ़ी)	१०० रुपये
१६. श्री पी० सी० सरकार	—	नरेन्द्रपुर (प० बं०)	१०० रुपये
१७. श्रीमती मीरा मिश्रा	—	इलाहाबाद	२०१ रुपये
१८. श्री गोपाल शं० तायवाडे	—	अमरावती (महाराष्ट्र)	१०० रुपये
१९. श्री महादेव शि० गुंडावार	—	भद्रावती (महाराष्ट्र)	५० रुपये
२०. श्री राजीव कुमार राजू	—	सैदपुर, पटना-४	३१ रुपये
२१. श्री राज सिंह	—	गाजियाबाद (उ० प्र०)	५० रुपये
२२. श्री चन्द्र मोहन	—	टुण्डला (उ० प्र०)	६८५ रुपये
२३. श्री के० अनूप	—	अरुणाचल प्रदेश	२० रुपये
२४. श्री शतदल साधु खान	—	सोनारपुर(पश्चिम बंगाल)	१०० रुपये
२५. श्री ए० जी० डगांवकर	—	यवतमाल	५१ रुपये

निवेदन— १. स्थायी कोष के लिए दान सम्पादकीय पते पर भेजने की कृपा करें।
२. चेक या ड्राफ्ट "विवेक शिखा" के नाम से भेजें।

श्रीरामकृष्ण की अन्त्य लीला

—स्वामी प्रभानन्द
सहायक सचिव, रामकृष्ण मठ एवं मिशन
अनुवादिका—डा० नन्दिता भार्गव

कुछ दिन हुए शारदीय दुर्गा पूजा हो गयी है। श्रीरामकृष्ण भक्तों के साथ कलकत्ते के श्यामपुकुर नामक स्थान में रहते हैं। शरीर में कठिन व्याधि है। गले में कैंसर हो गया है। जब वे बलराम के घर पर थे तब कविराज गंगा प्रसाद देखने आये थे। श्रीरामकृष्ण ने उनसे पूछा था—"यह रोग साध्य है या असाध्य ?" इसका कोई उत्तर कविराज ने नहीं दिया। चुप हो रहे थे। इस समय डाक्टर महेन्द्रलाल सरकार चिकित्सा कर रहे हैं। वे श्रीरामकृष्ण को भक्ति और श्रद्धा करते हैं। उन्होंने कहा था, "इतने दिनों बाद अब मुझे एक हृदय ग्राही मित्र मिला है।"[1]

आज आश्विनी की शुक्ला चतुर्दशी है। वृहस्पतिवार, २२ अक्टूबर १८८५ है। रोज की तरह आज भी सुबह मास्टर महाशय महेन्द्रलाल सरकार के घर गये थे। डाक्टर सरकार शंखारी टोला नामक मुहल्ले में रहते हैं। मास्टर महाशय ने डाक्टर साहब को पिछले दिन की ठाकुर की अवस्था की खबर को विस्तार पूर्वक बता दिया।

पास के एक दुकान से डाक्टर सरकार ने मिठाई मंगवाई। मिठाइयाँ अच्छी थीं। उन्होंने मास्टर महाशय को जलपान कराया। डाक्टर साहब की नजर मास्टर महाशय की थाली पर गई तो कह उठे, "वह न खाइये उसमें नमक ज्यादा है।" मास्टर महाशय खा चुके तो डाक्टर साहब ने सेवक से कहा कि पानी और चिलमची लाकर उनका हाथ धुला दो। डाक्टर साहब ठाकुर के भक्तों के निकट के सम्बन्धियों की तरह व्यवहार रखते हैं। वे मास्टर महाशय से बोले "सोच रहा हूँ तुम्हें एक दिन यहाँ खाने का न्यौता दूँगा।"

काम समाप्त कर डाक्टर सरकार रोगियों को देखने के लिये गाड़ी पर बैठे। मास्टर उनके साथ थे। रास्ते में विभिन्न विषयों पर वार्तालाप होता रहा। गिरीश घोष के "बुद्धदेव-चरित" नाटक के अभिनय की चर्चा होने लगी। गिरीश घोष ने डाक्टर साहब को निमंत्रण देकर बुद्धदेव-चरित का नाटक दिखलाया था। डाक्टर सरकार को नाटक देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई। गिरीष घोष ने उन्हें फिर आमंत्रण दिया है। इधर उधर जाते समय यदि मार्ग में "स्टार थियेटर" दिख जाता है तो अब डाक्टर सरकार नाटक देखने के लिये टिकट अवश्य खरीदते हैं। मास्टर महाशय ने टिकट खरीदने से उन्हें रोका और कहा, "गिरीश बाबू ने प्रेम पूर्वक आपको निमंत्रण दिया है, (टिकट खरीदने से) वह दुखित होंगे। "डाक्टर सरकार, "फिर रहने दो, फिर रहने दो।"

श्यामपुकुर के मकान में पहुँचने पर डाक्टर सरकार ने ठाकुर की व्याधि के उपसर्गों के बारे में पूछा। फिर उन्होंने औषधि और पथ्य के बारे में बता दिया परन्तु श्रीरामकृष्ण अपनी व्याधि की यन्त्रणाओं को भूलकर धर्म प्रसंग में तल्लीन थे।

श्रीरामकृष्ण—"पहले ईश्वर, उसके बाद जगत।"

"देखो, दो साधु विचरण करते हुए एक शहर

में आ पहुँचे। आश्चर्य चकित होकर उनमें से एक शहर, बाजार, दुकानें और इमारतें आदि देख रहा था। इसी समय दूसरे के साथ उसकी भेंट हो गई। तब दूसरे साधु ने कहा, "तुम दंग होकर शहर देख रहे हो, तुम्हारा डेरा-डण्डा कहाँ है ?" पहले साधु ने कहा, "मैं पहले घर की खोज करके, डेरा-डण्डा रख ताला लगाकर, निश्चित होकर निकला हूँ। अब शहर का रंग-ढंग देख रहा हूँ।"[3]

डाक्टर सरकार ने श्रीरामकृष्ण की वाणी के तात्पर्य को हृदयंगम कर कहा, "इन बातों में मुझे उच्चतम् दर्शन दिखाई दे रहा है।"

डाक्टर साहब ने अपने पुत्र अमृत के लिए क्षमा प्रार्थना की। बातचीत करते हुए ठाकुर को मालूम हुआ कि गिरीश घोष ने अपने "थियेटर" में नाटक देखने के लिये डाक्टर साहब को फिर से बुलवाया है। श्रीरामकृष्ण (डाक्टर सरकार से)—"तुम जाओगे—नरेन्द्र को भी ले जाना।" (श्रीरामकृष्ण वहाँ उपस्थित लोगों से)—"आज गिरीश को आने के लिए कहना।"

श्रीरामकृष्ण—"(गिरीश) उदार हैं।"

मास्टर महाशय—"रुपये पैसे पर मोह नहीं है। ऐसा न होने से वे यहाँ का भाव ग्रहण नहीं कर पाते।"

श्री रामकृष्ण ने सिर हिलाकर इस बात का समर्थन किया।

डाक्टर सरकार—"थियेटर" के लिये आमंत्रण किया है। परन्तु धन्यवाद नहीं दूंगा।" बातचीत के बाद डाक्टर सरकार विदा लेकर चले गये। उस दिन शाम के समय वे दुबारा आये।[4]

दिन के ग्यारह बजे हैं। बाल भक्त पूर्ण आया है। वह ईश्वर कोटि का है। "पूर्ण नारायण का अंश है, सत्वगुणी आधार है।"[5]

उसकी आयु चौदह वर्ष की है। उसके पिता राम बहादुर दीनानाथ घोष भारत सरकार के राजस्व विभाग के एक उच्च अधिकारी हैं। पूर्ण की माता कृष्णमानिनी बलराम बसु के दूर की रिश्तेदार हैं। पूंथि में लिखा है :—

"निजेर प्रभुर पूर्ण समुज्जल कृष्ण वर्ण, भाति पूर्ण विशाल नयन।"

नहे लम्बा नहे बेंटे, अंग आयतने मिठे, सुवलनि दोहारा गड़न॥

(अपने प्रभु का "पूर्ण" उज्जवल कृष्ण वर्ण का है। बड़ी बड़ी आँखें हैं। न लम्बा है न नाटा, अंग आयतन में ठीक है। स्वास्थ ठीक है।)

जैसे श्रीरामकृष्ण पहले राखाल चन्द्र को देखकर बालगोपाल के भाव में तल्लीन हो जाते थे, उसी प्रकार से आज पूर्ण को देख रहे हैं। श्रीरामकृष्ण ने पूर्ण को गोद में लिया—थोड़ी देर बाद उसे बिस्तर पर लिटा दिया—उस समय आपके आँखों में प्रेमाश्रु थे। कुछ समय बाद श्रीरामकृष्ण का भाव उतरा।

श्रीरामकृष्ण (मास्टर महाशय से)—"यह कैसा भाव है ?"

मास्टर महाशय चुप रहे। श्रीरामकृष्ण ने अपने अलौकिक दर्शन के बारे में बताया। आपने पूर्ण में अखण्ड का आलोक देखा। श्रीरामकृष्ण (मास्टर महाशय से)—"तुम्हारे साले (द्विज) को देखकर इतना क्यों होता है ?"

हरमोहन मित्र आया है। वह ठाकुर को पंखा करने लगा। हरमोहन नरेन्द्र का सहपाठी रहा। वह नयनचन्द्र दत्त स्ट्रीट में रहता है। उसे श्रीरामकृष्ण का स्नेही और कृपा प्राप्त थी। बाद में श्रीरामकृष्ण उससे निराश हुए थे। कुछ दिन पहले की ही बात है, जब एक दिन श्रीरामकृष्ण बलराम बसु के घर आये थे (३ जुलाई १८८५) तब वहाँ बातचीत के समय आपने हरमोहन के लिए कहा था, "जब हरमोहन पहले

आया था तो उसके लक्षण बड़े अच्छे थे। उसे देखने के लिये मेरा मन व्याकुल हो जाता था। तब उसकी उम्र १७-१८ की रही होगी। मैं अक्सर उसे बुला भेजता था। अब बीवी को लेकर अलग मकान में रहता है। जब अपने मामा के यहाँ रहता था, तब बड़ा अच्छा था। गृहस्थी की कोई झंझट नहीं थी। अब अलग मकान लेकर रोज बीवी के लिये बाजार करता था। (सब हँसते हैं) उस रोज वहाँ गया था। मैंने कहा, जा, यहाँ से चला जा, तुझे छूते मेरी देह किस तरह की हो जाती है।"[6]

श्रीरामकृष्ण हरमोहन को लक्ष्य कर कहते हैं, "बड़ा अच्छा आधार था—(अब) अलग मकान है बहुत करके आने को कहा था पर आया नहीं।" हरमोहन ने ठाकुर श्रीरामकृष्ण के चरणों में हाथ रखकर कहा—'अब (मेरी आध्यात्मिक उन्नति) किस तरह से होगी ?"

श्रीरामकृष्ण अपनी बात को ही कहते रहे— "फिर आया भी, परन्तु तब तक औरत ने उसका सब कुछ नष्ट कर दिया था।"

राखाल और भवनाथ भी विवाहित हैं। उनके बारे में श्रीरामकृष्ण ने कहा, "विशुद्ध होकर संसार में रहना चाहिये—अमिश्रित स्वर्ण बनकर। पिता के घर बीवी को लेकर रहने में दोष नहीं है।"

बड़े कातर भाव से हरमोहन ने फिर से ठाकुर के चरणों को स्पर्श किया। श्रीरामकृष्ण ने हर मोहन के हाथ हटा दिये और उसे नमस्कार किया।

श्रीरामकृष्ण—"जैसे रावण ने नारायण की बात नहीं सुनी थी।"

पहली जनवरी १८८६ में जब श्रीरामकृष्ण ने काशीपुर उद्यान गृह में कल्पतरु होकर अपने स्वरूप को प्रकाशित करके सभी को अभयदान किया था। उसी दिन कुछ भक्त लोग हरमोहन को श्रीरामकृष्ण के पास ले गये थे। उन लोगों ने ठाकुर से प्रार्थना की थी, हरमोहन पर कृपा करने के लिए। पर श्रीरामकृष्ण ने हरमोहन को स्पर्श कर कहा था, "आज रहने दो।"[7] महानन्द के क्षण में ठाकुर की कृपा लाभ न कर पाने पर हरमोहन उदास हो गये थे। परन्तु बाद में एक दिन कृपा दान कर श्रीरामकृष्ण ने उसके विषाद को दूर कर दिया था।

× × × ×

शाम के सात बजे का समय है। कमरे में दीपक का प्रकाश है। ठाकुर बिछौने पर बैठे हैं। आपके सामने और चारों तरफ भक्त गण बैठे हैं। डाक्टर श्रीरामकृष्ण ईशान मुखोपाध्याय को लक्ष्य कर निर्लिप्त भाव से संसार में रहने के सम्बन्ध में कह रहे हैं। आपने गृहस्थ आश्रम के ज्ञानी और संन्यास आश्रम के ज्ञानी की तुलना की। ज्ञान लाभ कर लेने के पश्चात् लोक कल्याण के लिए जो कार्य किया जाता है उसकी विशेषता बतायी। इसके बाद युग धर्म के विषय में बात करते समय श्रीरामकृष्ण ने बुद्धिमान डाक्टर साहब के साथ ज्ञानयोग और भक्तियोग पर बातचीत की।

श्रीरामकृष्ण, तुम जो कुछ कहते हो, उसे विचार मार्ग कहते हैं—ज्ञान योग। उस रास्ते से भी ईश्वर मिलते हैं। ज्ञानी कहते हैं, पहले चित्त—शुद्धि की आवश्यकता है। पहले साधना चाहिए तब ज्ञान होता है। भक्ति मार्ग से भी वे मिलते हैं। यदि ईश्वर के पाद पद्मों में एक बार भक्ति हो, यदि उनका नाम लेने में जी लगे तो फिर प्रयत्न करके इन्द्रियों का संयम नहीं करना पड़ता। रिपु आप ही आप वशीभूत हो जाते हैं। यदि किसी को पुत्र का शोक हो तो क्या उस दिन वह किसी से लड़ाई कर सकता है ? या न्यौते में खाने के लिए जा सकता है। वह क्या लोगों के सामने अहंकार कर सकता है या सुख-सम्भोग कर

सकता है ? कोई अगर एक बार उजाला देख लें तो क्या फिर वे कभी अँधेरे में रह सकते हैं ?"

डाक्टर साहब अवतारवाद नहीं मान रहे थे। ईशान मुखोपाध्याय डाक्टर साहब को अवतारवाद समझाने की चेष्टा करने लगे और रामचरित मानस के काकभुशुण्डी की कहानी बतायी। इसी बात पर श्रीरामकृष्ण ने कहा (डाक्टर से)—इतना समझना ही मुश्किल है कि वे ही स्वराट हैं और वे ही विराट् हैं। जिसकी नित्यता है, उन्हीं की लीला भी है। वे आदमी नहीं हो सकते यह बात क्या अपनी क्षुद्र बुद्धि से कह सकते हैं ? हमारी क्षुद्र बुद्धि में क्या इन सब बातों की धारणा हो सकती है ? एक सेर भर दूध के लोटे में क्या चार सेर दूध समा सकता है ? इसलिए जिन साधु और महात्माओं ने ईश्वर को प्राप्त कर लिया है उनकी बात पर विश्वास करना चाहिए। साधु-महात्मा ईश्वर की ही चिन्ता लेकर रहते हैं, जैसे वकील मुकदमों की चिन्ता लेकर।"

कुछ समय बाद ईशान मुखोपाध्याय ने डाक्टर सरकार से कहा, "आप अवतार क्यों नहीं मानते ? ...अभी अभी तो आपने कहा, ईश्वर के लिए सब कुछ सम्भव है।" श्रीरामकृष्ण (हँसते हुए)—"ईश्वर अवतार ले सकते हैं, यह बात इनके "साईन्स" (विज्ञान) में जो नहीं है, फिर भला कैसे विश्वास हो !" सब हँस उठते हैं।

बहस चलती रही। श्रीरामकृष्ण (डाक्टर से)—"साधु-संग की सदैव आवश्यकता है। रोग लगा ही हुआ है। साधुओं के उपदेश के अनुसार काम करना चाहिए। केवल सुनने से क्या होगा ? दवा का सेवन करना होगा और भोजन का भी परहेज रखना होगा। उस समय पथ्य आवश्यक है।"

श्रीरामकृष्ण के साथ डाक्टर साहब बड़ी देर तक बातें करते हुए बैठे रहे। गिरीश ने डाक्टर साहब को याद दिलाया कि उन्हें अभी दूसरे रोगियों को भी देखने जाना है। इस पर डाक्टर सरकार ने हँसते हुए कहा, "अरे ! मैंने यहाँ आना शुरू किया तब से कहाँ गयी डाक्टरी और कहाँ गये रोगी ! आपके इन परमहँस की संगति में आजकल हम भी परमहंस होते जा रहे हैं।"[४]

यह बात सुनकर वहाँ उपस्थित सभी हँसने लगे। विदा लेने से पूर्व डाक्टर साहब ने श्रीरामकृष्ण से कहा कि इस बीमारी में उन्हें किसी से बोलना नहीं चाहिये। परन्तु जब वे आयेंगे तो सिर्फ उनके साथ बोलने में कोई हर्ज नहीं है। यह सुनकर फिर सब लोग हँसने लगे।

इन दिनों डाक्टर सरकार श्यामपुकुर के मकान में आकर दो चार घण्टे श्री रामकृष्ण के साथ धर्मालाप करते थे। वे प्रश्न करते रहते और इस प्रकार विभिन्न विषयों पर अपने सन्देहों को दूर करते रहते थे। किसी किसी दिन डाक्टर साहब को स्मरण हो जाता था कि उन्होंने बहुत देर तक ठाकुर से बातचीत की। तब वे अफसोस करते थे और कहते "आज तुमने बहुत देर तक बात करवायी। बहुत गलती हो गई है। अब सारे दिन किसी से बात न करना, उससे ठीक हो जायेगा। तुम्हारी बातों में ऐसा आकर्षण है कि तुम्हारे यहाँ आने पर सारे काम छोड़ कर दो तीन घण्टे जब तक न बैठ लूँ, उठ नहीं पाता। पता नहीं चलता कि समय कैसे बीत जाता है। सो जो हो, अब किसी दूसरे के साथ बातचीत नहीं कर पाओगे। बस मेरे ही साथ किया करो।" यह बात सुन सभी हँस पड़े थे।[५]

श्रीरामकृष्ण—"यह बीमारी अच्छी कर दो, उनका नाम-गुण कीर्तन नहीं कर पाता हूँ।"

डाक्टर—"ध्यान करने ही से उद्देश्य पूरा होता है।"

श्रीरामकृष्ण—"यह कैसी बात ? मैं एक ही ढर्रे पर क्यों चलूँ ? मैं कभी पूजा करता हूँ,

कभी जप, कभी ध्यान, कभी उनका नाम लिया करता हूँ और कभी उनके गुण गा-गाकर नाचता हूँ।"[10]

---

1. श्रीरामकृष्ण परहंस देवेर जीवन वृतांत पृष्ठ—१६६
2. श्रीरामकृष्ण वचनामृत, तृतीय भाग पृष्ठ—३३७-३३८
3. श्रीरामकृष्ण वचनामृत प्रथम भाग पृष्ठ—५०४
4. श्रीरामकृष्ण वचनामृत तृतीय भाग परिच्छेद १८
5. श्रीरामकृष्ण लीला प्रसंग तीसरा खण्ड पृष्ठ १४५
6. श्रीरामकृष्ण वचनामृत द्वितीय भाग, पृष्ठ—२३४
7. श्री श्रीरामकृष्ण परमहंस देवेर जीवन वृतान्त पृष्ठ—१७६
8. श्रीरामकृष्ण लीलामृत द्वितीय भाग पृष्ठ—४२१-४२२
9. श्रीरामकृष्ण लीलामृत द्वितीय भाग, पृष्ठ—४२२
10. श्रीरामकृष्ण वचनामृत तृतीय भाग, पृष्ठ—३२२ से ३५४ से उद्धृत

●

बुद्धावतारं वन्दे कृपालं

—श्री किशोर कुणाल

विश्ववंद्य बुद्धदेव की पावन स्तुति में गोस्वामी तुलसीदास ने 'विनय पत्रिका' (पद ५२) में लिखा है—

प्रबल पाखंड महि मंडलाकुल देखि
निंद्यकृत अखिल मख कर्म जालं।
शुद्ध बोधैक घनज्ञान गुणधाम अज
बुद्ध अवतारं वन्दे कृपालं॥

(समग्र पृथ्वी को प्रबल पाखण्ड से व्याकुल देख आखिर यज्ञ कर्मजाल की निन्दा करने वाले, शुद्ध बोध-स्वरूप, सम्पूर्ण ज्ञान-गुण-धाम, जन्म-रहित तथा कृपालु भगवान् बुद्ध की वन्दना में करता हूँ।)

'गीतगोविन्द' में कोमलकान्त पदावली के अमर सर्जक भक्तराज जयदेव की स्तुति है—

निन्दसि यज्ञविधेरहह श्रुतिजातम्
सदयहृदयदर्शितपशुघातम्
केशव धृतबुद्धशरीर जय जगदीश हरे।

(वेदविहित यज्ञविधि की निन्दा करने वाले, पशुहिंसा को देख आर्द्र हृदय हो जाने वाले, बुद्ध-वपु धारण करने वाले केशव की जय हो।)

'दशावतार-स्तोत्र' में सनातन धर्म के अप्रतिम प्रचारक आदि शंकर ने भगवान् बुद्ध की वन्दना इन शब्दों में की है—

धराबद्धपद्मासनस्थांघ्रियष्टि—
नियम्यानलो न्यस्तनासाग्रलष्टिः।
य आस्ते कलौ योगिनां चक्रवर्ती
स बुद्धः प्रबुद्धोऽस्तु निशिचक्रवर्ती॥

(कलियुग में पद्मासन एवं योगमुद्रा में स्थित, योगियों में चक्रवर्ती भगवान् बुद्ध हमारे चित में अधिष्ठित रहें।)

भारतीय संस्कृति के सबसे तेजस्वी प्रतिबिम्ब एवं ओजस्वी प्रवक्ता स्वामी विवेकानन्द ने भगवान् बुद्ध के विषय में यह भावाभिव्यक्ति की है—

'भगवान् बुद्ध मेरे इष्टदेव हैं—मेरे ईश्वर हैं। नहीं, हम उनको ईश्वर का अवतार समझकर उनकी पूजा करते हैं। नैतिकता का इतना निर्भीक प्रचारक संसार में और उत्पन्न नहीं हुआ। कर्मयोगियों में सर्वश्रेष्ठ स्वयं कृष्ण ही मानो शिष्यरूप से अपने उपदेशों को कार्यरूप में परिणत करने के लिए उत्पन्न हुए। पुनः वही वाणी सुनाई दी, जिसने गीता में शिक्षा दी थी। गीता के उपदेशों के जीते-जागते उदाहरणस्वरूप गीता के उपदेशक दूसरे रूप में पुनः इस मर्त्यलोक में पधारे। ये ही शाक्य-मुनि हैं। राज-सिंहासन को त्यागकर ये दुःखी, गरीब, पतित, भिक्षुकों के साथ रहने लगे। इन्होंने दूसरे राम के समान चाण्डाल को भी छाती से लगा लिया।'

अनेक मूर्धन्य पाश्चात्य विद्वानों ने अपने विख्यात ग्रंथों में यह मत व्यक्त किया है कि भगवान् बुद्ध आजीवन हिन्दू रहे और उन्होंने जो धर्म चलाया वह प्राचीन सनातन धर्म का ही प्रसार था। स्थानाभाव के कारण मात्र दो विद्वानों के मत ही यहाँ उद्धृत किये जा रहे हैं। भारतीय संस्कृति के अन्यतम अध्येता एवं प्रखर प्रवक्ता मनीषीप्रवर मैक्समूलर ने लिखा है—"भारत के प्राचीन धर्म का अध्ययन करने के बाद मैं यह हमेशा महसूस करता रहा हूँ कि बौद्ध धर्म कोई नूतन धर्म नहीं था, बल्कि भारतीय मानस की धार्मिक, दार्शनिक, सामाजिक और राजनीतिक अभिव्यक्तियों का नैसर्गिक विकास था।' राइस डेविड्स का निष्कर्ष है—"यह तथ्य हमें कभी नहीं भूलना चाहिए कि गौतम का जन्म, लालन पालन, जीवन-यापन और मरण एक हिन्दू के रूप में हुआ। हिन्दुओं में वे सबसे महान, सबसे बुद्धिमान तथा सबसे श्रेष्ठ थे।

भारतीय धर्मों के गहन अध्येता तथा सक्षम व्याख्याता महान् दार्शनिक एवं भूतपूर्व राष्ट्रपति सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने "बौद्ध धर्म के २५०० वर्ष" पुस्तक की प्रस्तावना में लिखा है—"बौद्ध धर्म का प्रारम्भ किसी नूतन या स्वतंत्र धर्म के रूप में नहीं हुआ। अध्यात्म या नीतिशास्त्र के मौलिक सिद्धान्तों से बुद्ध उस मत से सहमत थे, जिसे उन्होंने विरासत में पाया था।... बुद्ध ने हिन्दू विरासत का उपयोग इसकी कुछ मान्यताओं में सुधार लाने के लिए किया। वे रिक्ति की पूर्ति करने आये थे, न कि उसका विनाश करने। इस देश में हम लोगों के लिए बुद्ध हमारी धार्मिक परम्परा के उत्कृष्ट प्रतिनिधि हैं। एक तरह से, बुद्ध आधुनिक हिन्दू धर्म के निर्माता थे।"

॥ यूथ (सबसे बलि का खाना) ॥

किन्तु आज यह करुण विडम्बना है कि आधुनिक हिन्दू धर्म के निर्माता को ही इससे पृथक करने का प्रयत्न किया जा रहा है, भारतीय संस्कृति के विशाल वटवृक्ष के सबल मूल एवं स्वस्थ शाखा को छिन्न करने का सघन अभियान चलाया जा रहा है। यह देश का दुर्भाग्य है कि कभी समग्र आदर्शों के पर्याय, सकल सगुण-निर्गुण भक्तों के परमाराध्य मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम के पावन नाम का संकीर्ण स्वार्थ-सिद्ध हेतु राजनीतिक से आबद्ध करने का षड्यंत्र चलाया जाता हैं, तो कभी कृपा एवं करुणा के अगाध पयोधि भगवान् बुद्ध की अमित आभा को सीमित कूप में कैद करने का कार्य कुशलता पूर्वक चलाया जाता है और अब वह दिन दूर नहीं कि क्रूर कंश की कठोर कारा में समस्त जगत् के उद्धारार्थ आविर्भूत भव-भेषज भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के चारु चरण में कोई दारुण 'दामन्' (रस्सी) का बन्धन न डाल दे। अन्त में, सामाजिक सौमनस्य के लिए वैष्णव कवि क्षेमेन्द्र की वाणी में सर्वाशापरिपूरक, कल्पद्रुम भगवान् बुद्ध की स्तुति से इस प्रस्तुति की इति करता हूँ—

"सच्छाव: स्थिरधर्ममूलवलय: पुण्यालवावस्थिति:
श्रीविद्याकरुणाम्भसा हि विलसद्विस्तीर्णशाखान्वित:।
सन्तोषोज्ज्वलपल्लव: शुचियश: पुण्य: सदा सत्फल:,
सर्वाशापरिपूरको विजयते श्रीबुद्धकल्पद्रुम: ॥

इस देश की जनता गौतम बुद्ध को बारह सौ वर्षों से अधिक की अवधि से ईश्वर का अवतार मानती आयी है। आदि शंकराचार्य का काल ७८८-८२० ई० है। उनके दादा-गुरु (उनके गुरु गोविन्दाचार्य के गुरु) गौड-

पादाचार्य ने माण्डूक्य-कारिका के चतुर्थ प्रकरण में जो यह स्तुति की है, वह भी भगवान् बुद्ध की ही स्तुति समझी जाती है—.

ज्ञानेनाऽकाशकल्पेन धर्मान् यो गगनोपमान् ।
ज्ञेयभिन्नेन सम्बुद्धः तं वन्दे द्विपदां वरम् ॥

पुराणों की प्राचीन परम्परा में गौतम बुद्ध, विष्णु, या कृष्ण के नवम् अवतार के रूप में समादृत हुए हैं। पद्म पुराण ने भगवाण विष्णु के दस अवतारों का उल्लेख निम्नलिखित श्लोकों में किया है—

मत्स्यः कूर्मो वराहश्च नरसिंहोऽथ वामनः ।
अरामो रामश्च कृष्णश्च बुद्धः कल्किश्च ते दश ॥

मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, दशरथि, राम, कृष्ण, बुद्ध एवं कल्कि-विष्णु के दस अवतार हैं। (पद्मपुराण २५७/४१) लिंगपुराण (२/४८/३२) में भी अवतार-विषयक यही श्लोक है। वराह-पुराण (४/२ तथा २/२०/३२) में भी अवतारों के यही नाम एवं क्रम है। यही क्रम हैं। यही क्रम एवं अंक अग्नि-पुराण में भी स्वीकृत किये गये हैं। अग्नि-पुराण (४९/८) ने तो भगवान् बुद्ध की मूर्ति की मुद्रा का भी वर्णन किया है—

शान्तात्मा लम्बकर्णश्च गौरांगश्चाम्बरावृतं ।
ऊर्ध्वपद्मस्थितो बुद्धो वरदाभयदायकः ॥

(शान्तचित, लम्बकर्ण, गौर-वर्ण, काषाय वस्त्र से आवृत, ऊर्ध्वपद्मासीन, अभयवरदायक मुद्रा भगवान बुद्ध की प्रतिमा है।)

भगवान् के नारायण-कवच (षष्ठ स्कंध, अष्टम् अध्याय, श्लोक, १९) में भगवाम् बुद्ध से यह प्रार्थना की गयी है कि वे पाखण्ड एवं प्रमाद से रक्षा करें।

"द्वैपायनो भगवान प्रबोधात्
बुद्धस्तु पाखण्डगणात् प्रमादात् ।"

(भागवत-पुराण में अनेक स्थलों पर (यथा २/७/३७, ६/८/१९, १०/४०/२२ तथा ११/४/२३) भगवान् बुद्ध का उल्लेख विष्णु या कृष्ण के अवतार के रूप में किया गया है। इसी प्रकार विष्णु-पुराण (१६/२) तथा भविष्य-पुराण (४/१२/२८) में भी बुद्धदेव को विष्णु भगवान् के अवतार के रूप में प्रस्तुत किया गया है। वास्तव में, सभी पुराण भगवान् बुद्ध को नवम् अवतार मानने में सर्वसम्मत है। पुराण भगवान् बुद्ध को 'सकृप' यानी कृपायुक्त अवतार मानते हैं।

भगवान् विष्णु की दशावतार-मूर्तियों के क्रम में भगवान् बुद्ध की मूर्तियाँ विपुल संख्या में मिली है, स्थल-संकोच के कारण उनका समग्र प्रकाश सम्भव नहीं, किन्तु दो सर्वाधिक प्राचीन प्रतिमाओं का उल्लेख समीचीन होगा। मध्य प्रदेश के सीरपुर नामक स्थान में अष्टम् शती के आस-पास का एक मंदिर हैं, जिसमें भगवान् श्रीरम की मूर्ति के पार्श्व में भगवान् बुद्ध की ध्यानावस्थित मुद्रा में एक मूर्ति विराजमान है, जिससे ज्ञात होता है कि बुद्धदेव की पूजा वैष्णव मन्दिरों में आठवीं सदी से होती रही है। महाबलीपुरम् के पास से प्राप्त सातवीं सदी के उतरार्द्ध के एक शिलालेख से यह विदित होता है कि सातवीं सदी में बुद्ध की गणना विष्णु के दशावतारों में होने लगी थी। उस शिलालेख का जो सुसंगत श्लोक है, वह अपूर्ण है और निम्नलिखित है—

......हस्य नारहिंश्च वामनः ।
रामो अरामश्च रामश्च बुद्धः कल्की च ते दश ॥

इसी से मिलता-जुलता श्लोक महाभारत के शान्ति-पर्व के एक प्रक्षिप्त अंश में पाया जाता है।

मत्स्य कूर्मो वराहश्च नरसिंहोऽथ वामनः ।
रामो रामश्च रामश्च बुद्धः कल्कीति ते दश ॥

इस प्रकार भगवान् बुद्ध को विष्णु का नवम् अवतार मानने की परम्परा बारह-तेरह सौ वर्ष प्राचीन हैं और हर हिन्दू प्रत्येक शुभ कार्य के संकल्प में बौद्धावता की बात निम्नलिखित मंत्र में दुहराता है "....श्रीश्वेत वाराहकल्पे वैवस्वतमन्वन्तरे अष्टाविंशतितमे युगे कलियुगे प्रथमचरणे जम्बूद्वीपे भरतखण्डे आर्यावर्तैकदेशे

पुण्जक्षेत्रे बौद्धावतारे..." अब इस सहस्त्राधिक वर्ष की चिर-परम्परा को कुछ अति उत्साही मत्र छिन्न-विच्छिन्न करना चाहते हैं।

पुराणों की यह प्राचीन परम्परा संस्कृत साहित्य एवं भाष्य-टीकाओं में भी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। शंकर के समकालीन कुमारिल भट्ट के तन्त्रवार्तिक से यह आभास मिलता है कि उनके पूर्व भगवान् बुद्ध की गणना दशावतार के रूप में होने लगी थी। सन् ११०० ई० के आस-पास प्रसिद्ध टीकाकार अपरार्क ने याज्ञवल्क्य-स्मृति की अपनी वहृद टीका में मत्स्य-पुराण (२८५/७) का एक उद्धरण प्रस्तुत किया है जिसमें बुद्ध-सहित सभी दशावतारों का नाम-निर्देश किया गया है। सन् ११५० ई० के आस-पास प्रसिद्ध कवि जयदेव ने 'गीतगोविन्द' की रचना की, जिसमें उन्होंने कृष्ण के दशावतारों की स्तुति की, जिसमें से भगवान् बुद्ध का स्तुतिपरक श्लोक ऊपर उद्धृत है। जयदेव ने केशव के विविध अवतारों के विशिष्ट गुणों का वर्णन करते हुए भगवान बुद्ध को 'कारुण्यम् आतन्वते' पद से विभूषित किया। जयदेव का 'गीत गोविन्द' अतिशय लोकप्रिय हुआ और हर संस्कृतज्ञ के कण्ठ का हार वना।

सन् १०३६ ई० में कश्मीर के यशस्वी वैष्णव कवि क्षेमेन्द्र ने 'दशावतार-चरितम्' का प्रणयन किया। ग्रन्थ के प्रारम्भ में क्षेमेन्द्र ने विष्णु के निम्नलिखित अवतारों का उल्लेख किया।

"मत्स्यः कूर्मो वराहः पुरुवहरिवतुर्वामनो जामदग्न्यः।
काकुत्स्थः कंसहन्ता स च सु गतमुनिः कल्किनाममापरंच विष्णुः॥"

मायावी मार के प्रहार के प्रभाव से निर्विकार, राग-द्वेष के पाश से परे, शान्तिमूर्ति सुगत बुद्ध की स्तुति में क्षेमेन्द्र की यह प्रणति हैं--

"यस्य सभ्रूभ्रमाकथा माररामाःससैनिकाः।
चक्लनं रागं न द्वेषं स शान्त्यै सुगतोऽस्तु वः॥

भगवान् बुद्ध के महाप्रयाण को क्षेमेन्द्र ने 'वैष्णव धाम-गमन' (अथ एवं वैष्णवं धाम गते सुगतभास्वति) कहा है। ग्रन्थ के नवम् सर्ग में महाकवि क्षेमेन्द्र ने "बुद्धावतारो नवमः" शीर्षक से ७४ श्लोकों में भगवान् बुद्ध का पावन चरित प्रस्तुत किया है। प्रथम श्लोक के 'जगन्निवासः करुणान्वितोऽभूत्' से अन्तिम श्लोक तक प्रत्येक पद में वैष्णव कवि की सुगत के प्रति असीम श्रद्धा परिलक्षित होती है। अन्तिम श्लोक में क्षेमेन्द्र ने भाव व्यक्त किया है कि जन-करुणा के कारण अच्युत विष्णु ने समस्त जगत् को ज्ञान के आलोक से तिमिर रहित करने के लिए पुनः बुद्ध के रूप में मानव शरीर धारण किया—

अथ स भगवान् कृत्वा सर्वं जगज्जिनभास्करस्तिमिर-
रहितं ज्ञानालोकैः क्रमाद्गुणिवान्धयः।
जनकरुणया सद्धर्माख्यं निधाय परंवपुस्तरणशरणं
संसाराब्यावभूत् पुनरच्युतः॥

वैष्णव महाकवि क्षेमेन्द्र ने भगवान् बुद्ध के चरित पर अन्य ग्रन्थ 'बोधिसत्वावरान कल्पता' का प्रणयन किया, जिसका पद्यानुवाद तिब्वती भाषा में सन् १२७२ ई० में विख्यात विद्वान् 'सोनतीन् लोचावे' ने किया। यह अनुवाद तिब्बत में अतिशय लोकप्रिय हुआ, जो एक वैष्णव कवि के लिए महती उपलब्धि कही जायेगी।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि गौतम बुद्ध सनातन धमर के श्रेष्ठ पुरोधाओं द्वारा सदैव समादृत, सुपूजित एवं वंदित रहे हैं तथा उन्हें कृपा एवं करुणा का अवतार माना जाता रहा है। 'संस्कृति के चार अध्याय' में राष्ट्रकवि दिनकर यह भाव व्यक्त करते हैं— "...यह मानना अधिक युक्ति-युक्त है कि बौद्ध धर्म कोई नया धर्म नहीं, बल्कि हिन्दुत्व का ही संशोधित रूप है। असल में अपनी कुरीतियों से लड़ने के लिए हिन्दुत्व ने ही बौद्ध धर्म का रूप लिया था, जैसा कि वह प्रत्येक संकट-काल में लेता रहा है और जिन आचार्यों ने बुद्धदेव की गिनती हिन्दू धर्म के दशावतार में की, उनका भी यही भाव रहा होगा कि बुद्ध पराये नहीं, अपने हैं और 'धर्मसंस्थापनार्थं विष्णु जैसे राम और कृष्ण बनकर आये थे, वैसे ही पशु-हिंसा को रोकने के लिए इस बार वे बुद्ध बनकर आये है। वे प्रचलित धर्म के भंजक नहीं, सुधारक थे।"

(दैनिक हिन्दुस्तान, पटना से साभार)

भारतीय संस्कृति और महाभारत

डॉ० उषा वर्मा
रीडर, हिन्दी विभाग, जगदम कालेज, छपरा

संस्कृति प्राण है। जैसे प्राण शरीर के हर कोश में समाया रहता है, वैसे ही संस्कृति पूरी चेतना को आप्लावित करती है। सभ्यता बाहरी चीज है, संस्कृति आन्तरिक। सभ्यता का बदलाव जितना सरल है, संस्कृति का बदलाव उतना ही दुष्कर। सभ्यता जितनी शीघ्रता से सीखी जा सकती है, संस्कृति उतनी शीघ्रता से अपनायी नहीं जा सकती। संस्कृति हमारे मन-प्राणों में रची रहती है। हमारे आचरण में घुली रहती है। हमारे सोच को प्रभावित करती है। हमारे निष्कर्ष पर हावी रहती है। हमारे देखने, सोचने और करने का प्रतिविम्ब हमारी चेतना पर लगातार पड़ता रहता है और वही प्रतिविम्ब हमारी संस्कृति की आधार-भूमि है। संस्कृति एक तरह की जीवन-दृष्टि है—जीवन को देखने, मानने, समझने की खास दृष्टि। संस्कृति एक जीवन-पद्धति भी है—जीवन जीने की विशिष्ट कला। यह पद्धति और दृष्टि एक दिन में जन्म नहीं लेती। हजारों वर्षों के प्रयोग से जो जीवन-पद्धति हमें रास आ जाती है, जो जीवन-दृष्टि हमारे अनुकूल पड़ती है, हम उसे ही अपनी संस्कृति के रूप में जानने-पहचानने लगते हैं।

संस्कृति का जन्म केन्द्रीय विचारो से होता है—उन विचारों से जो किसी जाति या राष्ट्र के चिन्तन की धुरी होते हैं। भारत के चिन्तन की धुरी अध्यात्म में है। इसलिए भारतीय संस्कृति मूलतः, मुख्यतः और स्वभावतः आध्यात्मिक है। भारत अनेक धर्मों, जातियों, सम्प्रदाय, पंथों और संस्कृतियों का संगमस्थल रहा है। सृष्टि के लम्बे इतिहास में भारतीय संस्कृति पर अनेक प्रभाव पड़े हैं। इसके बावजूद इसकी अपनी कुछ विशिष्टताएँ हैं। इसका अपना रंग है। अपनी सुगन्ध है। अपनी अलग पहचान है। समन्वयवादिता और सहिष्णुता के लचीलेपन ने इसे अपूर्व दृष्टि दी है, अपार बल दिया है।

भारतीय संस्कृति किसी जाति-विशेष की, धर्म-विशेष की, काल-विशेष की या स्थान-विशेष की संस्कृति नहीं है। यह तो मात्र इसलिए भारतीय है कि भारत के मानव-शुभैषी मनीषियों की ऊर्ध्वचेनना में इसका जन्म हुआ था, भारत की भूमि पर इसका पोषण-पालन हुआ था और भारतीय ऋषियों ने मानव-कल्याण के लिए जन-जन तक इसका प्रचार-प्रसार किया था। हजारों वर्षों की साधना से हमारे ऋषि-मुनि इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि यह संसार यात्रियों का समूह है। सभी यात्रा पर हैं। सभी कहीं जा रहे हैं। इस लोकयात्रा को सरल-सुगम बनाने के लिए, सम्पूर्ण मानवता के कल्याण के लिए उन्होंने कुछ शाश्वत मूल्यों का निरूपण-निर्धारण किया। उन्हीं मूल्यों को धर्म की संज्ञा मिली। वे ही मूल्य संस्कृति के प्राण बने।

साहित्य संस्कृति का प्रधान वाहन है। हमारा आदि-साहित्य वेद भारत की संस्कृति का आधार स्तम्भ रहा है। हमारे तपःपूत, युगद्रष्ट्रा और भविष्यस्रष्टा ऋषियों ने ऊर्ध्वचेतना के शिखर पर पहुँचकर जो कुछ देखा वही वेद में वर्णित है। किन्तु, ऊर्ध्वचेतना के शिखर पर पहुँचकर कही गयी अमरवाणी जनमानस में उतारने के लिए व्याख्या की आवश्यकता थी, विस्तार की आवश्यकता थी, उदाहरणों से पुष्टि की आवश्यकता थी। यह काम किया संस्कृत साहित्य की उत्तरवर्ती रचनाओं—उपनिषद्, पुराण, रामायण, महाभारत आदि ने। महाभारत ने तो इस दायित्व को इतनी दक्षता से निभाया है कि उसे न केवल हमारे जातीय इतिहास की गरिमा मिली है, वरन् सांस्कृतिक स्रोत की उपाधि

भी उपलब्ध हुई है। भारतीय संस्कृति का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ 'भगवद्गीता' इसी महाभारत का एक अंश है। 'विस्णुसहस्रनाम', 'अनुगीता', 'भीष्मस्तवराज', 'गजेन्द्रमोक्ष' जैसी महत् पुस्तिकाएँ यहीं से उदधृत की गयी है। ये पाँच ग्रन्थ 'पंचरत्न' के नाम से पुकारे जाते हैं। इन्हीं गुणों के कारण महाभारत 'पंचमवेद के नाम से विख्यात है। इसके कथानक परवर्ती रचनाकारों के लिए उपजीव्य रहे हैं। इसके उपाख्यानों का अवलम्बन करके कालान्तर में साहित्यसेवियों ने अनेक काव्य, नाटक, गद्य, पद्य, चम्पू, कथा आख्यायिक आदि विविध साहित्यिक विधाओं की सृष्टि की है। भारत ही नहीं, जावा, सुमात्रा, बाली द्वीप आदि के साहित्य और जीवन में भी महाभारत विद्यमान है।

यों तो 'महाभारत' क्षत्रिय वंश के प्रणेता का इतिहास है, जिसमें प्रधानत: नहुष, ययाति, प्रतीप, शान्तनु, भीष्म पितामह, धृतराष्ट्र, पाण्डु आदि चन्द्रवंशीय क्षत्रियों का वर्णन मिलता है और प्रसंगानुसार नाग, दानव, असुर, राक्षस, दैत्य, गन्धर्व, देव तथा भारद्वाज, व्यास, गौतम आदि ऋषियों का वर्णन भी। किन्तु, इतिहास के क्रम में इसमें धर्म, राजनीति, अर्थनीति, कर्म, मोक्ष आदि विषयों का ऐसा विशद और सुष्ठु चित्रण हुआ है कि एक अकेला महाभारत भारतीय संस्कृति को पूरा-पूरा उजागर करने में समर्थ है। इसके प्रणेता व्यासजी ने स्वयं कहा है कि जो कुछ इस ग्रन्थ में है, वह अन्यत्र है, परन्तु जो कुछ इसमें नहीं है वह अन्यत्र कहीं भी नहीं है—

धर्मेह्यर्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ ।
यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित ॥

(आ० ६२-५३—महाभारत)

महाभारत के रचयिता महर्षि वेदव्यास महाभारत के पात्रों के परम आत्मीय हैं। इनकी माता सत्यवती और पिता चेदिराज उपरिचय थे। यमुना के किसी द्वीप में जन्मने के कारण ये द्वैपायन कहलाये। श्यामवर्ण होने के कारण इन्हें कृष्णमुनि भी कहा गया। वेदों को चार संहिताओं में विभाजित करने के कारण इनका वेदव्यास भी नाम पड़ा। धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर इनके नियोग पद्धति से उत्पन्न आत्मज थे। महाभारत युद्ध में उन्होंने कौरवों तथा पांडवों में समझौता कराने का बहुत यत्न किया था। किन्तु, अधर्मपथ के पथिक कौरवों ने उनकी बात नहीं मानी और युद्ध टाला नहीं जा सका। अन्तत: इन्होंने तीन वर्षों के सतत परिश्रम से महाभारत-जैसे अनुपम ग्रंथ की रचना की—

त्रिभिर्वर्षै: सदोत्थायी कृष्णद्वैपायनोमुनि: ।
महाभारतमाख्यानं कृतवानदमुत्तमम् ॥

(आदि पर्व ५६-३२)

इस ग्रन्थ के विकास के तीन क्रमिक स्वरूप माने जाते हैं—१. जय, २. भारत, ३. महाभारत। इस ग्रन्थ का मौलिक रूप 'जय' नाम से प्रसिद्ध था। फिर उसे 'भारत' नाम से पुकारा जाने लगा और अन्त में उसे 'महाभारत' कहा गया। कहा जाता है कि व्यासजी ने पहले चौबीस हजार (२४०००) श्लोकों की रचना की—

चतुर्विंशति साहस्रीं चक्रे भारत संहिताम् ।

(आ० प० १.१०२)

फिर उन्होंने इन्हें अपने पुत्र शुक तथा वैशम्पायन आदि शिष्यों को सुनाया। वैशम्पायन ने राजा जनमेजय को, लोमहर्षण के पुत्र उग्रश्रवा (सौति) ने शौनक आदि ऋषियों को सुनाया। इस कहने-सुनने के क्रम में मूलग्रन्थ के श्लोकों में वृद्धि होती गयी और अब उसमें सवा लाख (१२५०००) श्लोक उपलब्ध हैं। इस क्षेपक प्रक्रिया ने न केवल मूलग्रंथ के कलेवर को बढ़ाया है, वरन् उसके मूल स्वर को भी क्षति पहुँचायी है। विदेशियों के हस्तक्षेप से भी बहुत हानि हुई है। मूल महाभारत को उसकी विशिष्ट शैली, भाषा और प्रकृति के आधार पर क्षेपक के दलदल से निकालने के कुछ विद्वानों द्वारा सराहनीय प्रयास हुए हैं। श्री सुकन्याकर ने सतत साधना के अनन्तर 'महाभारत' का प्रामाणिक सम्पादन किया है। दयानन्द संस्थान की ओर से भी ऐसा प्रयत्न किया गया है। यह महाग्रन्थ १८ खण्डों में विभाजित है। इन्हें पर्व कहते हैं—१. आदि, २.

सभा, ३. वन, ४. विराट, ५. उद्योग, ६. भीष्म, ७. द्रोण. ८. कर्ण, ६. शल्य, १०. सौप्तिक, ११. स्त्री, १२. शान्ति, १३. अनुशासन, १४ अश्वमेघ १५. आश्रमवासी, १६. मौसल, १७. महाप्रस्थानिक, १८. स्वर्गारोहण । 'आदिपर्व' में – चन्द्रवंश का विस्तृत इतिहास तथा कौरव-पांडवों की उत्पत्ति का वर्णन है। 'सभापर्व' में द्यूतक्रीड़ा, 'वनपर्व' में पाण्डवों का वनवास, 'विराटपर्व' में पाण्डवों का अज्ञातवास, 'उद्योगपर्व' में श्रीकृष्ण का दूत बनकर कौरवों की सभा में जाना तथा शान्ति के लिए प्रत्यन करना, 'भीष्मपर्व' में कृष्ण द्वारा अर्जुन को गीता का उपदेश, युद्ध का आरम्भ, भीष्म का शरशय्या पर पड़ना, 'द्रोणपर्व' में अभिमन्युवध, द्रोणाचार्य का युद्ध और वध, 'शल्यपर्व' में शल्य की अध्यक्षता में युद्ध और वध, 'सौप्तिक पर्व' में पाण्डवों के सोये हुए पुत्रों का रात में अश्वत्थामा द्वारा वध, 'स्त्रीपर्व' में स्त्रियों का विलाप, 'शान्तिपर्व' में भीष्म पितामह का युधिष्ठिर का उपदेश, 'अनुशासनपर्व' में धर्म तथा नीति की कथाएँ, 'अश्वमेधपर्व' में युधिष्ठिर का अश्वमेध यज्ञ करना, 'आश्रमवासीपर्व' में धृतराष्ट्र-गान्धारी आदि का वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करना, 'मौसलपर्व' में यादवों का मूसल द्वारा नाश, 'महाप्रस्था-निकपर्व' में पान्डवों की हिमालय यात्रा तथा 'स्वर्गा-रोहरणपर्व' में पाण्डवों का स्वर्ग में जाना वर्णित है। इसके अतिरिक्त, महाभारत में अनेक रोचक तथा नीतियुक्त उपाख्यान—१. शकुन्तलोपाख्यान, २. मत्स्यो-पाख्यान, ३. रामोपाख्यान, ४. शिवि उपाख्यान, ५. सावित्री उपाख्यान, ६. नलोपाख्यान आदि भी हैं, जो भारतीय शील. स्वभाव और संस्कृति को रेखांकित करते हैं।

पुराण गणना, श्रीमद्भागवत, आइन-ए-अकबरी आदि प्रामाणिक ग्रन्थों के आधार पर यह सिद्ध हो चुका है कि महाभारत का युद्ध बीते पाँच हज़ार वर्षों से भी अधिक हो चुका है। आज की स्थिति उस दिन की स्थिति से काफी भिन्न है, पात्र भिन्न हैं, परिस्थितियाँ भिन्न हैं, प्रकृति भिन्न है, परिवेश भिन्न है। किन्तु, 'महाभारत' की प्रासंगिता में कोई कमी नहीं आयी है। उसके पात्र आज भी हमें अपने से लगते हैं, उसकी समस्याएँ हमें हमारी अपनी समस्याओं की याद दिलाती हैं और उसके निष्कर्ष हमें दिशा दिखाने में पर्याप्त सक्षम है। यह इसलिए कि महाभारत हमारी संस्कृति का प्रस्तोता रहा है।

'भगवद्गीता' महाभारत का एक अंश मात्र है। किन्तु, अपने-आपमें इतनी पूर्ण है कि हजारों वर्षों से भारतीय जनमानस को आलोड़ित-विलोड़ित और प्रशमित करती रही हैं। गीता के पास हर प्रश्न का उत्तर है, हर समस्या का समाधान है। जीवन के हर मोड़ पर गीता की आवश्यकता महसूस की जाती है। कोई जग से भागता है तो गीता की बात की जाती है। कोई जग के प्रति मोहान्ध होता है तो गीता उद्धृत की जाती है। जन्म पर गीता याद आती है। मृत्यु पर गीता-पाठ होता है। हलफ के लिए गीता उठायी जाती है। मोक्ष के लिए गीता गायी जाती है। ऐसा लगता है कि वेदादि ग्रंथों का सार 'महाभारत' पूरा का पूरा सूत्र रूप में गीता के सात सौ श्लोकों में समा गया है। यह प्रचलित कथन अक्षरशः सत्य प्रतीत होता है कि एक 'गीता' का ही पूरा-पूरा अध्ययन कर लेना पर्याप्त है—

'गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः।'

गीता का सम्बन्ध किसी विशेष धर्म या सम्प्रदाय तक सीमित नहीं है और न वह किसी स्थान, काल या पात्र-विशेष के प्रति प्रतिबद्ध है। उसकी प्रतिबद्धता विश्व के सभी द्विधाग्रस्त मोहासक्त व्यक्तियों के प्रति है। अर्जुन की समस्याओं से घिरा हर व्यक्ति उसमें अपना समाधान खोज सकता है।

महाभारत को धर्म की खान कहा गया है। जैसे — समुद्र और हिमालय जड़ रत्नों की खान हैं वैसे ही महाभारत धर्म की खान है—

यथा समुद्रो भगवान् तथाहि हिमवान गिरिः
ख्याता वुभौ रत्ननिधि तथा भारत मुच्यते ॥

(आदिपर्व—६२।४८)

उसमें मानवता के तमाम रक्षक उपादानों को धर्म की

संज्ञा दी गयी हैं। यही धर्म विरासत के रूप में भारतीय संस्कृति को उपलब्ध हुआ है। स्वामी विवेकानन्द ने कहा है—"देश का प्राण धर्म है।...अतः यदि तुम धर्म का परित्याग करने की चेष्टा में सफल हो जाओ और राजनीति, समाजनीति या किसी दूसरी चीज को अपनी जीवन-शक्ति का केन्द्र बनाओ तो उसका फल यह होगा कि तुम एकबारगी नष्ट हो जाओगे।" इस धर्म का अर्थ न बाह्याडम्बर है और न किसी पूजा-पाठ की विशेष पद्धति। इसे किसी देवालय से भी बाँधा नहीं जा सकता। यह धर्म सम्पूर्ण मानवता के कल्याण का मार्ग है, आत्मशुद्धि का मार्ग है, आत्मसाक्षात्कार का मार्ग है, शिव से चलकर शिव तक पहुँचने का मार्ग है, यह पथ है, पाथेय है और लक्ष्य भी है। 'महाभारत' कहता है कि धर्म ही सत्पुरुषों का हित है, धर्म ही सत्पुरुषों का आश्रय है और चराचर तीनों लोक धर्म से ही चलते हैं—

धर्मः सतां हितः पुंसां धर्मश्चैवाश्रयः सताम्।
धर्मल्लोकास्त्रयस्तात प्रवृत्ताः सचराचराः॥

धर्म यानी मानवोचित चिन्तन। धर्म यानी मानवोचित आचरण। धर्म यानी मानवोचित वाणी। मन, कर्म, वचन को साध लेना ही धर्म है। इन्हें साधनेवाला ही साधु (धार्मिक) है और वही सही अर्थ में मानव कहलाने का अधिकारी भी है। गीता में इस साधु को विस्तार से व्याख्यायित किया गया है। महाभारत में विविध कथाओं से उसके उदाहरण दिए गए है। अन्ततः पूरी व्याख्या और उदाहरण को 'परोपकार' और 'परपीड़न' के निष्कर्ष के आधार पर सर्वसाधारण के लिए सुलभ सुबोध बना दिया गया है—

'परोपकारायहि पुण्याय पापाय परपीड़नम्।'

बाद में इसी भाव को तुलसीदास ने अपने 'रामचरितमानस' में—

परहित सरिस धर्म नहिं भाई।
परपीड़ा सम नहिं अधमाई॥

कहकर व्यक्त किया है। यह निकर्ष भारतीय संस्कृति की अन्यतम निधि है। वह आज भी अपना आचरण इसी निकर्ष पर कसती है और दूसरों को इसी निकष का सात्विक उपहार देती है।

'महाभारत' कर्ममूलक है। गीता तो कही ही गयी है—कर्मविमूढ़ता के क्षणों में कर्मोपदेश के रूप में। सर्वत्र कर्म की वकालत है। कृष्ण अर्जुन को युद्ध से विरत होने की अनुमति नहीं देते। युधिष्ठिर को महर्षि व्यास से राज्य छोड़कर संन्यासी होने की आज्ञा नहीं मिलती। अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव भी युधिष्ठिर के संन्यास का विरोध करते हैं। द्रौपदी भी उनके संन्यास को न्यायोचित नहीं मानती। भीष्म पितामह उस परिस्थिति-विशेष में पाण्डव के युद्ध को न्यायसंगत बतलाते हुए उन्हें राजधर्म का उपदेश देते हैं। महाभारत में अन्य कई छोटी-बड़ी ऐसी कहानियाँ आती हैं, जो जो कर्म को मानव के लिए अनिवार्य घोषित करती हैं। कर्म को धर्म की गरिमा दी गयी है। राजधर्म, प्रजा धर्म, देशधर्म, कुल धर्म आदि की विस्तृत विवेचना की गयी है। कर्म के अनुरूप ही मानव का भाग्य निर्मित होता है। कर्म और भाग्य का यह अन्योनाश्रय संबंध कालान्तर में कर्म को भाग्य का पर्याय—'करम' तक बना देता है। आज भी कर्म धर्म के रूप में स्वीकृत है, भाग्य के पर्याय के रूप में मान्य है।

वेदों की तरह महाभारत में भी ब्रह्म को एक, अनन्त, अखण्ड और अविनासी माना गया है। किन्तु, इस विश्वास के साथ कि ब्रह्म अवतार भी लेते हैं, अततायियों का विनाश भी करते हैं। यह विश्वास आज भी हमारा संबल है। महाभारत में इस बात पर विशेष बल दिया गया है कि विश्व के सभी चर-अचर प्राणी उसी ब्रह्म के अंश हैं। उसी से जन्मे हैं। अंततः, उसी में विलयित होनेवाले हैं। समता का यह उच्चतम सिद्धान्त हमें विश्व के किसी भी समतावादी राष्ट्र के समक्ष सिर उठाकर खड़ा होने की हिम्मत देता है। राजधर्म और प्रजाधर्म की विस्तृत और सूक्ष्म विवेचना भारत में लोकतन्त्र की प्राचीनता पर मुहर लगाती है और उसे भारतीय मिट्टी और मानसिकता के सर्वथा अनुकूल घोषित करती है।

भारतीय संस्कृति में मानवदेह की बड़ी महिमा है। दुर्लभ है यह देह। श्रेष्ठतम है यह देह। भीष्म पितामह ने मानव देह को देवालय और देही को शिवरूप बतलाता है—

'देहो देवालय: प्रोक्त स जीव: केवल शिव::'

तुलसीदास ने भी मानव देह को 'दुर्लभ' कहा है। श्री रामकृष्ण परमहंस ने भी जीव को 'शिव' से विभूषित किया है और 'शिवभाव' से उसकी सेवा करने का निर्देश दिया है।

यह देह कर्म को समर्पित है और कर्म प्रभु को। इसलिए विज्ञ जन स्वयं को कर्त्ता या भोक्ता नहीं मानते। वे कर्म को प्रभु का आदेश मानकर करते हैं। फल को प्रभु का प्रसाद समझ कर भोगते हैं। उनका मन उसमें आसक्त नहीं होता। वे लिप्त रहकर भी अलिप्त रहते हैं। सम्पृक्त होकर भी असम्पृक्त होते हैं। उनका भोग त्याग की गरिमा से महिमान्वित रहता है। उनका त्याग प्रभु के सान्निध्य से सुवासित होता रहता है। उन्हें धन, मान या यश नहीं बाँध पाते। नाते रिश्ते उनके बन्धन नहीं बनते। भौतिक उपलब्धियों पर उन्हें हर्ष नहीं होता और न लौकिक क्षति उन्हें आकुल-व्याकुल कर पाती है। जीव के आवागमन में उनकी आस्था रहती है। इसलिए इस जन्म को वे शुरुआत नहीं मानते और न मृत्यु को अन्त मानते हैं। महाभारत के सात्त्विक पात्रों ने इन मान्यताओं को जीया है। भारतीय संस्कृति इन्हें जीना जीव और जगत् दोनों के लिए शुभ मानती है।

भारतीय संस्कृति में त्याग की बड़ी महिमा है। त्याग को महिमामंडित करने का श्रेय महाभारत को है। उसके अनेकानेक पात्रों ने त्याग को धर्म के रूप में धारण किया है। उसकी आख्यायिकाओं ने चरम त्याग के अनेक उदाहरण प्रस्तुत किए हैं। ध्यातव्य है कि उनका त्याग न भयजनित है, न बलहीनता को प्रश्रय देता है। वह तो साक्षात शक्ति है।

'महाभारत' ने कई स्थानों पर भोग की नश्वरता को उजागर किया है और ययाति—जैसे पात्रों के उदाहरणों से इस बात की पुष्टि की है कि भोग से तृप्ति नहीं होती, हो ही नहीं सकती। तृप्ति के लिए आत्म-संयम अपेक्षित है, आत्मसाक्षात्कार अनिवार्य है। भोगवाद का समर्थन करने वाली सभी दलीलें भारत के इस सांस्कृतिक विश्वास के समक्ष घुटना टेकने को विवश हैं। यदि यह बात सच नहीं होती तो भोग-ऐश्वर्य की पराकाष्ठा पर पहुँचे हुए देश आत्मिक शान्ति के लिए भारत की ओर नहीं देखते।

'अहिंसा परमो धर्म:' महाभारत का प्रमुख नारा है। किन्तु, यह अहिंसा कायरता की हिमायती नहीं है और न सर्वत्र अतिशय सहिष्णुता को सही मानती है। अहिंसा के प्रति आग्रह भाव के बावजूद हमारी संस्कृति ने वीरता को सराहा है, निर्भीकता पर गर्व किया है। यह संस्कृति अतातायी बनने का प्रशिक्षण नहीं देती, किन्तु बिना मानसिक द्वेष या घृणा भाव के अतातायियों का विनाश आवश्यक मानती है।

धर्म को महाभारत में विस्तृत पीठिका उपलब्ध हुई है। न उसका सरलीकरण किया गया है और न उस पर अतिरिक्त रंगाई की गई है। उसकी सूक्ष्मता और पेचीदगियों को व्याख्यायित-विश्लेषित करते हुए यह स्पष्ट किया है कि देश, काल, पात्र, परिस्थिति आदि के आधार पर मानव के गुण-दोष के अर्थ बदलते रहते रहते हैं। शान्तिपर्व में भीष्म पितामह कहते हैं कि ऐसा आचार नहीं मिलता जो हमेशा सब लोगों का समान हितकारक हो। यदि किसी एक आचार को स्वीकार किया जाय तो दूसरा उससे बढ़कर मिलता है और यदि दूसरे आचार को स्वीकार किया जाय तो वह किसी तीसरे का विरोध करता है।

न हि सर्वहित: कश्चदाचार: संप्रवर्तते।
तेनैवान्य: प्रभावति सोऽपरं बाधते पुन:॥

शान्ति-पर्व २५९, १७-१८

आदिपर्व में उन्होंने स्पष्ट कर दिया है कि जिस मनुष्य को अन्याय पर क्रोध आता है, जो अपमान सह नहीं सकता, वही पुरुष कहलाता है। जिस मनुष्य को क्रोध नहीं है वह नपुंसक के ही समान है, (आ० प०

१३२-१३३)। मानव-आचरण के प्रति महाभारत की यह दृष्टि कानूनी बारीकियों की पूर्वपीठिका हैं।

'महाभारत' 'पुरुषार्थ चतुष्टय' का दस्तावेज है। भारतीय संस्कृति में अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष को 'पुरुषार्थ चतुष्टय' कहा गया है। यहां अर्थ अपेक्षित है, पर धर्मसम्मत। काम कमनीय है, पर धर्मावेष्ठित। मोक्ष आकांक्षित है, पर धर्मानुगत। इस संस्कृति ने जीवन की तमाम उपलब्धियों को धर्म की डोर से बांध रखा है और धर्म आचंत मानवता के कल्याण से जुड़ा हुआ है। महाभारत के अन्त में कहा गया है कि मैं भुजा उठा कर चिल्ला रहा हूं परन्तु कोई सुनता नहीं। धर्म से ही अर्थ और काम की प्राप्ति होती है। इस प्रकार, धर्म का आचरण तुम क्यों नहीं करते ?—

(ऊर्ध्वं बाहुर्विरौम्येष न च कश्चच्छृणोति माम।
धर्मादर्शश्च स धर्मः किं न सेव्येत।)

धिकट और विविध यातना सहने के बावजूद कुन्ती ने युद्ध के पहले अपने पुत्रों को संदेश देते हुए कहा है कि ऐसा कोई काम न करना जिससे धर्म का लोप हो। गांधारी ने, अपने पुत्रों के प्रति समस्त पुत्र-प्रेम के बावजूद कहा है कि जहां धर्म है वहीं जय है। (यतो धर्म; ततो जय:)। सत्य धर्म का सर्वोत्कृष्ट अंग है। इसलिए 'महाभारत' में सत्य का स्तवन भी है। वेदव्यासजी ने सत्य को अश्वमेध यज्ञ से भी श्रेष्ठ कहा है। 'सत्यमेव जयते' हमारा सांस्कृतिक विश्वास है, सांस्कृतिक चिह्न भी। यह इसलिए कि हम मानते रहे हैं कि 'नहि सत्यात् परो धर्मः।

'महाभारत' शान्ति का समर्थक है। युद्ध के कारण और विभीषिका की विस्तृत विवेचना इसी संदेश के लिए की गई है कि विरोध, द्वेष और क्रोध से जीवन में सफलता नहीं मिलती। श्रीकृष्ण ने बार-बार दुर्योधन को समझाया है कि शान्ति में ही संसार का शुभ है। शब्दभेद से यही बात भीष्म पितामह, विदुर, धृतराष्ट्र, गांधारी, द्रोणाचार्य आदि पात्र भी कहते रहे हैं। किन्तु, दुर्वृत्तियों का शिकार और विदेशियों के हाथ का खिलौना बना दुर्योधन भीषण नरसंहार का कारण बनता है। इस महाविनाश को लिपिबद्ध करना और अपने पुत्रों-शिष्यों को सुनाना इस बात का प्रमाण है कि व्यासजी ने 'महाभारत' के माध्यम से विश्वशान्ति का सन्देश दिया है, उस सनातन धर्म का सन्देश दिया है, जो विश्व का कल्याण की भावना से ओतप्रोत है।

धर्म और शान्ति के प्रति इसी आग्रहभाव और शिवदृष्टि के फलस्वरूप भारतीय संस्कृति में विश्वसंस्कृति के गहनमूल और विश्वकल्याण के व्यापक उपादान विद्यमान हैं। युगों से यह संस्कृति विश्व को मानव-संस्कृति की दिशा दिखाती रही है। आज भी सांस्कृतिक दान के लिए विश्व की दृष्टि भारत की ओर ही लगी हुई है। महर्षि अरविन्द ने कहा था—"भगवान हमेशा से भारत को दाता के महिमामय आसन पर प्रतिष्ठित किया है। भारतवासी जगत् के धर्मगुरु रहे हैं।" यह उद्घोषणा भी की थी कि भविष्य में भी इसे गुरु होना है क्योंकि जगत् गुरु होना भारत की नियति है। स्वामी विवेकानन्द ने इस सांस्कृतिक दान के लिए विश्व को भारत का अत्यन्त ऋणी माना है।

"मित्रो ! मैं तुमसे कहना चाहूँगा कि निस्सन्देह बुद्धि का आसन ऊँचा है, परन्तु यह अपनी परिमित सीमा के बाहर नहीं बढ़ सकती। हृदय—केवल हृदय के भीतर से ही दैवी प्रेरणा का स्फुरण होता है, और उसकी अनुभव शक्ति से ही उच्चतम जटिल रहस्यों की मीमांसा होती है······।"

—स्वामी विवेकानन्द

(भारतीय व्याख्यान पृ० २५१)

तीन वर

—स्वामी विवेकानन्द

(स्वामीजी ने अमेरिका में एक जन-सभा में अपने शिष्यों को इस कहानी के बारे में बताया था। यह "देववाणी" नामक पुस्तक में संकलित है।)

एक गांव में एक गरीब व्यक्ति रहता था। उसका नाम था बिशु। बचपन से ही वह कुछ मंद बुद्धि एवं एकरस स्वभाव का व्यक्ति था। परन्तु वह अपने आपको खूब बुद्धिमान समझता था। बिशु के संसार में उसकी बूढ़ी माँ के सिवा कोई न था।

बिशु सारा दिन परिश्रम करके जो दो-चार पैसे लाता; उसकी मां उसी से संसार निर्वाह करती। बिशु में एक गुण था, वह सदैव खुश रहता एवं अच्छी-अच्छी कहानियाँ सुनाया करता। इसलिए मुहल्ले के सारे व्यक्ति उसका आदर करते।

कुछ दिन बाद बिशु की माँ की मृत्यु हो गयी। बिशु कुछ दिन तक काम पर नहीं गया, मुहल्ले में कहानी सुनाने नहीं गया, सिर्फ घर में बैठकर रोता रहा। कुछ दिन बाद बिशु को काम पर जाना पड़ा। कुछ समय बीत जाने के बाद उसके मुख पर कभी-कभी हँसी और मुस्कराहट भी नजर आने लगी। फिर कुछ और दिन बाद वह पहले की तरह कहानी सुनाने और घूमने मुहल्ले में निकलने लगा।

परन्तु बीच-बीच में वह अत्यंत दुःखी हो जाता। संसार में उसका कोई नहीं। घर कौन देखेगा, खाना कौन बनाएगा? मुहल्ले की एक वृद्धा ने उससे कहा, "सुनो बिशु, कब तक ऐसे संन्यासी बने रहोगे? कितने दिन तक स्वयं बना-बनाकर खाते रहोगे? हम लोग सब देख-सुनकर एक बहू ले आते हैं, तुम शादी कर लो।"

बहुत कहने के बाद बिशु शादी करने पर राजी हो गया। अनेक संबंध आये पर बिशु को एक भी पसंद नहीं आया। बिशु की नाक थी चपटी। अतः उसने सोचा कि यदि वह सुन्दर पत्नी लाता है तो उसे सपाट नाक के लिए लांछित होना पड़ेगा। इसलिए बहुत देखने के बाद उसने एक चपटी नाक वाली एवं थोड़ी वयस्क लड़की से शादी की। दोनों की नाकें चपटी थी, अतः कोई किसी से घृणा नहीं करता था। कुछ दिन जाने के बाद ही वह संसार के सारे काम-काजों को संभालने लगी। फिर से बिशु निश्चिंत हो काम पर जाने लगा।

परन्तु एक और मुसीबत आयी। मुहल्ले के बच्चे उसे और उसकी स्त्री की चपटी नाकों के लिए चिढ़ाने लगे। इसे सुन-सुनकर बच्चे-बूढ़े सभी हँसते।

उसकी स्त्री की आँखों में यह सब सुनकर पानी आ जाता। नित्य कितना सहा जा सकता। बिशु ने कहा, "अच्छा, देखो मैं कोई उपाय करता हूं।"

दूसरे दिन बिशु सारा मुहल्ला घूम आया। जहाँ-जहाँ उसे बच्चे दिखते, वह उन्हें चेतावनी देता हुआ कि वह उन्हें चैन से नही रहने देगा यदि वे उसकी स्त्री को फिर चिढ़ाए, आगे बढ़ जाता।

फिर ठीक समय पर बिशु अपने काम पर निकल गया। बिशु की बात का उलटा असर पडा। पहले तो दो-चार बदमाश लड़के ही कहते थे, अब सारे लड़के उसे और उसकी पत्नी को चिढ़ाने लगे।

शाम को घर लौटकर बिशु ने सब कुछ सुना। उसके मन में आघात पहुँचा। भगवान ने उन्नत नाक नहीं दी है, इसमें उसका क्या दोष? फिर बहुत सोचने के बाद उसने अपनी पत्नी से कहा, "मेरे एक दोस्त की शादी

है। आज रात ही मुझे जाना पड़ेगा। तुम जल्दी से खाना बना दो। मुझे लौटने में दो-चार दिन लगेंगे। तुम सावधानी से रहना।"

सुबह-सुबह थोड़ा खा-पीकर बिशु निकल पड़ा। वस्तुतः दोस्त के घर नहीं जा रहा था। उसके घर से काफी दूर एक घना जंगल था। वह रात को ही उस वन में पहुँच गया। फिर एघ पत्थर पर बैठ एकाग्र हो शिव की तपस्या करने लगा।

पहला दिन, दूसरा दिन, तीसरा दिन भी चला गया। बिशु आहार, निद्रा सबकुछ भूल शिव की उपासना करने जगा। कितने सर्प उसके शरीर पर से चले गये, कितने सिंहों ने गर्जन कर उसे डराया, कितने भालू उसके पास आए पर वह अविचलित होकर शिव को बुलाता रहा। उसने प्रतिज्ञा की थी कि चाहे वह शिव से साक्षात्कार करेगा या फिर प्राण दे देगा।

बिशु की कठिन तपस्या किसी तरह भी भंग नहीं हुई। देखते ही देखते भयंकर तूफान आया, शिलावृष्टि हुई परन्तु बिशु ने किसी का भी ख्याल नहीं किया। धीरे-धीरे तूफान समाप्त हो गया। आकाश में पूर्णिमा का चाँद चमकने लगा। जूही, मालती, चमेली की गंध से वन महमह हो उठा। कोयल, पपीहा पंचम आलाप करने लगे। बिशु ने इनका भी ख्याल न किया। वह सिर्फ एकग्र हो शिव को बुलाता रहा।

फिर ऐसा प्रतीत हुआ मानो स्वर्ग में शत्-शत् देवकन्याएँ जा रही हों। उनकी वीणा के स्वर, पायल की झंकार से पूरा वन गूँजित हो उठा। बिशु का मन चंचल होने लगा। परन्तु फिर भी उसने स्वयं को एकाग्रचित्त कर, उपासना में लीन हो गया।

देवताओं में शिव सहृदय हैं। कोई यदि व्याकुल हो उन्हें पुकारे तो वे स्थिर नहीं रह पाते। आकर दर्शन देने के बाद वे भक्त की मनोकामना पूरी करते। सहज ही तुष्ट हो जाने के कारण ही उनका नाम अशुतोष है।

तीसरे दिन रात के बाद शिव ने दर्शन दिया और कहा, "बत्स, मैं तुम्हारी तपस्या से संतुष्ट हूँ। तुम वर माँगों।

बिशु ने अपनी कहानी शिव को सुनाई। तब शिव ने तीन पासे बिशु को देकर कहा, "इन्हें धरती पर फेंक जो कुछ माँगोगे, वहीं मिलेगा। तीन बार से अधिक यह नहीं होगा।"

यह कहकर शिव अंतर्ध्यान हो गए। बिशु कितना आनंदित था। पासों को कपड़े में लपेट वह घर चला गया। उसकी पत्नी तब आंगन में झाड़ू दे रही थी। बिशु ने कहा, "झाड़ू देना छोड़ो, हाथ-मुँह धोकर यहाँ आओ मैं सारे दुःखों को खत्म कर आया हूँ।"

बिशु अत्यंत खुश था। बिशु को इतना प्रसन्न देख उसकी पत्नी चकित थी। उसने पूछा, "क्या हुआ है, बोलो तो।"

—"बोलूँगा, बोलूँगा, सब हो गया है, सारे दुःख दूर हो गए हैं।"

—क्या हो गया है? तुम कहाँ गये थे? क्या करके आए हो?

बिशु की पत्नी ने बिशु को पागल समझ लिया। वह डर के मारे रोने लगी।

बिशु ने कहा, "क्या हुआ? भगवान ने स्त्रियों के मस्तिष्क में बुद्धि ही नहीं दी है। इधर आओ बैठो।"

और बिशु ने खींचकर उसे बैठा लिया। फिर पोटली को खोल तीनों पासों को निकाल सारी कहानी सुना दी। बिशु की पत्नी भी अत्यंत खुश हो गयी।

तीन वर माँगना था। क्या-क्या माँगा जाय? दोनों ने सोचना आरंभ किया। स्त्री ने कहा "देखो हम बहुत गरीब हैं, तुम पैसा मांगों।"

बिशु ने नकारात्मक अंदाज से कहा, "नहीं, चपटी नाक के लिए हमें कितना लांछित होना पड़ता है। पहले सुन्दर नाक माँगूँगा।"

बहुत बहस के बाद भी दोनों एक मत नहीं हो पाये। स्त्री कहती थी पैसा और बिशु कहता था नाक।

अंततः दोनो झगड़ने लगे। बिशु ने क्रोधित हो पासों को जमीन पर फेंक दिया और कहा, "हम दोनों को सुन्दर-सुन्दर नाक हो।"

देखते ही देखते बिशु और उसकी स्त्री का सारा शरीर सुन्दर-सुन्दर नाकों से भर गया। बिशु की पत्नी गुस्से और दुःघ में रोने लगी।

बिशु को विश्वास था, वह बहुत बुद्धिमान हैं। उसने पत्नी को कहा, "डरती क्यों हो? देखो, सब ठीक हो जायगा।"

उसने फिर जमीन पर एक पासा फेंक कर कहा, "हमारी सारी नाकें गायब हो जाये।"

कहते ही कहते सारी नाकें गायब हो गयी। परन्तु एक और मुसीबत आयी। अब उनके शरीर पर एक भी नाक नहीं बची थी। चपटी होने पर भी नाक तो थी, अब वह भी नहीं बची। बिशु की पत्नी रोये जा रही थी।

बिशु भी दुविधा में पड़ गया। अब सिर्फ एक वर बाकी है, क्या-क्या माँगा जाय? बिशु सिर पर हाथ रख सोचने लगा। यही अंतिम बार है, वह अपने और पत्नी के लिए एक-एक सुन्दर नाक माँग सकता है। परन्तु एक मुश्किल है। उनके नाकों को देख लोग पूछेंगे और सब जान जाएँगे कि बिशु कितना बुद्धू है कि तीन-तीन वर पावे के बाद भी कोई उन्नति नहीं कर सका।

बिशु ने तब अंतिम पासे को जमीन पर फेंक कहा, "हमें एक-एक पहले जैसी नाक दे दो।"

शिव के वर के अनुसार वैसा ही हुआ। मंद बुद्धि बिशु तीन-तीन वर पाकर भी कोई उन्नति नहीं कर सका।

अन्ततः कुछ भी गोपनीय न रहा। सब बिशु की तपस्या और नाक के बारे में जान गए। फिर तो सारे लोग उसे और भी चिढ़ाने लगे।

●

विवेक चूड़ामणि

—स्वामी वेदान्तानन्द

अनुवादक डॉ० आशीष कुमार बनर्जी

महावाक्य द्वारा ब्रह्मज्ञानोत्पत्ति के प्रकार का वर्णन किया जा रहा है—

तत्वंपदाभ्यामभिधीयमानयो ब्रह्मात्मनोः
शोधितयोर्यदीत्थम।
श्रुत्या तयोस्तत्त्वमसीति सम्यगेकत्वमेव
प्रतिपाद्यते मुहुः ॥२४१

ऐक्यं तयोर्लक्षितयोर्न वाच्ययोर्निगद्यतेन्योन्यविरुद्ध धर्मिणोः।
खद्योतभान्वोरिव राजभृत्ययोः कूपाम्बुराश्योः
परमाणुमेर्वोः ॥२४२

यदि 'तत्वमसि' श्रुतिवाक्य द्वारा 'तत् एवं त्वम' ये दो पदों में लक्ष्मीभूत किया गया है एवं शोधित ब्रह्म की एवं जीव के सम्पूर्ण एकत्व को पुनः पुनः प्रतिपादित किया गया है तो वह उस एक जीव एवं ब्रह्म के लक्षित अर्थ की ही वर्णन है। परस्पर विरुद्ध स्वभाव विशिष्ट दो वस्तुओं की एक्य आक्षरिक अर्थों

में स्वीकार नहीं किया जाता है। जुगनु एवं सूर्य, राजा एवं सेवक, कूप एवं समुद्र अथवा परमाणु के साथ सुमेरु पर्वत की एकता आक्षरिक अर्थों में जैसे सम्भव नहीं है, ब्रह्म और जीव के मध्य की एकता भी उसी प्रकार आक्षरिक अर्थों में सम्भव नहीं है। २४१-२४२

जुगनु और सूर्य की एकता आलोकदान सामर्थ्य में, राजा और सेवक में एकता मनुष्य रूप में, कूप और समुन्द्र में एकता जलधार में है। उसी प्रकार जीव और ब्रह्म में एकता दोनों के चैतन्यस्वरूपता में है।

जीव वोध जब तक रहता है तबतक जीव जन्म-मरण धर्म विशिष्ट जीव ही रहता है। ब्रह्म के साथ अबाधित एकत्व का अनुभव आवश्यक है। (छा० उ० ६ अध्याय में ८-१६ श्लोक)

तयोर्विरोधोऽयमुपाधिकल्पितो न वास्तवः कश्चिदुपाधिरेषः ।
ईशस्य माया महदादिकारणं जीवस्य कार्यं शृणु पञ्चकोशम् ॥२४३

जीव तथा ब्रह्म का भेद उपाधि द्वारा कल्पित है। परन्तु यह उपाधि वास्तव नहीं है। ईश्वर की उपाधि महत्तत्वादि की कारण रूपा माया है; और जीव को उपाधि महत् आदि का परिणाम पंचकोष है।२४३

एतानुपाधी परजीवयोस्तयोः सम्यङ्निरासे न परो न जीवः ।
राज्यं नरेन्द्रस्य भटस्य खेटकस्तयोरवोहे न भटो न राजा ॥२४४

माया एवं मायानिर्मित पंचकोष ये दोनों, यथाक्रम से ईश्वर एवं जीव के उपाधि है। इन दोनों उपाधि का निराकरण होने पर—इनके मिथ्याल का सम्यक रूप से प्रमाणित होने पर ईश्वर भी नहीं रहता और जीव भी नहीं रहता (शुद्ध अद्वय ब्रह्म मात्र शेष रह जाता हैं)। [दृष्टान्ता स्वरूप] कोई व्यक्ति का राज्य होने से उसे राजा कहते हैं; वही व्यक्ति शस्त्रों को धारण करने पर या युद्ध करने पर उसे योद्धा कहते हैं। परन्तु उसका राज्य या शस्त्र दोनों न रहने पर वह राजा भी नहीं रहता, योद्धा भी नहीं रहता—(सभी विशेषणों से वर्जित एक मनुष्य मात्र ही रहता है)। २४४

मायारूप उपाधि आश्रित सर्वज्ञ, शक्तिमान इत्यादि रूप में प्रतीयमान होता है; और पंचकोष द्वारा अच्छादित जीव स्वयं को दान, हीन. दुःखी समझता है। ईश्वर और जीव के उपाधि को हटा लेने पर ईश्वर अथवा जीव का पृथक् अस्तित्व अनुभूत नहीं होता है; तब एक अद्वितीय निर्विशेष ब्रह्म शेष रह जाता है।

अबतक आत्मा के स्वरूप के विषय में युक्तियाँ बतायी गई। अब श्रुति प्रमाण द्वारा पूर्वोक्त सिद्धान्तों का समर्थन किया जा रहा है—

अथात आदेश इति श्रुतिः स्वयं निषेधति ब्रह्मणि कल्पितं द्वयम् ।
श्रुति प्रमाणानुगृहीत बोधात्तयोर्निरासः करणीय एव ॥२४५

'अर्थात् आदेशः' यह श्रुतिवाक्य स्वयं ही ब्रह्म के कल्पित द्वैतभाव को अस्वीकार करता है। श्रुति प्रमाण से उत्पन्न ज्ञान की सहायता से कार्य एवं कारण रूप कल्पित उपाधि दोनों को ही अस्वीकार करना (उनके मिथ्यात्व को अनुभव करना) कर्तव्य है।२४५

"अखात आदेशों नेति नेति न ह्येतस्मादिति नेत्यन्यात् परमस्ति।" वृ. उ. २।३।६—'अतएव 'नेति, नेति' (यह नहीं, यह नहीं) यही ब्रह्म का निर्देश हैं क्योंकि 'नेति' इस वाक्य से भिन्न या श्रेष्ठ दूसरा कोई निर्देश नहीं है।

बैद्यनाथ च्यवनप्राश

अब पोलीजार में उपलब्ध
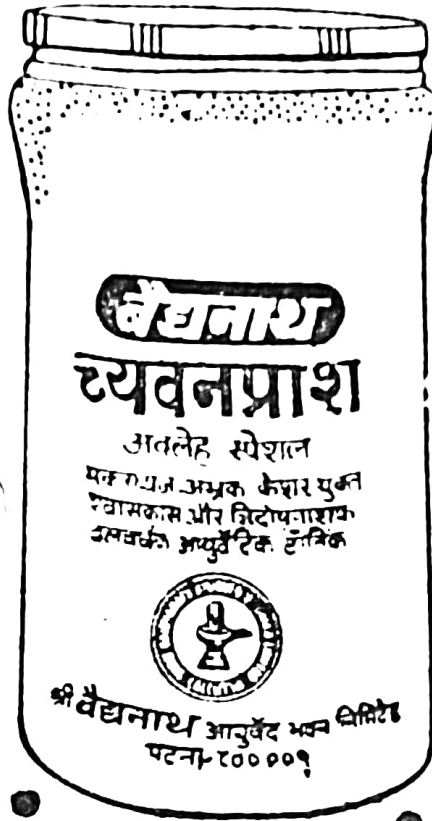
आदर्श आयुर्वेदिक पारिवारिक टानिक

कहीं आपके डिब्बे में "मोपेड" तो नहीं ?

प्रत्येक एक किलो स्पेशल और साधारण एवं ५०० ग्राम स्पेशल च्यवनप्राश के डिब्बे में इनामी कूपन प्राप्त कर "मोपेड" एवं ३०५ अन्य पुरस्कार प्राप्त करने का सुनहरा अवसर ।

बैद्यनाथ ७०० से अधिक दवाएं पांच आधुनिक कारखानों में तैयार क...

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड

बैद्यनाथ भवन रोड, पटना-१

डाक पंजीयित संख्या सी. एन. पी. १४ ८३

हमारे कुछ महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

- श्रीरामकृष्णलीलाप्रसंग (तीन खण्डों में)
- श्रीरामकृष्णलीलामृत
- श्रीरामकृष्णवचनामृत (तीन भागों में)
- श्रीरामकृष्ण भक्तमालिका (दो भागों में)
- भगवान रामकृष्ण : धर्म तथा संघ
- माँ सारदा
- आनन्दधाम की ओर
- भगवान श्रीकृष्ण और भगवद्गीता
- आचार्य शंकर
- विवेकानन्दजी के संग में
- गीतातत्त्व
- महापुरुषों की जीवनगाथाएँ

स्वामी विवेकानन्दकृत कुछ ग्रन्थ

- ज्ञानयोग
- प्रेमयोग
- देववाणी
- धर्मविज्ञान
- वेदान्त
- मेरे गुरुदेव
- विविध प्रसंग
- हिन्दू धर्म के पक्ष में
- वर्तमान भारत
- शक्तिदायी विचार
- राजयोग
- सरल राजयोग
- हिन्दू धर्म
- धर्मतत्त्व
- शिकागो वक्तृता
- भारतीय व्याख्यान
- भारतीय नारी
- विवेकानन्दजी के संग में
- मेरी समरनीति
- विवेकानन्द—राष्ट्र को आह्वान
- भक्तियोग
- कर्मयोग
- आत्मतत्त्व
- धर्मरहस्य
- कवितावली
- चिन्तनीय बातें
- हमारा भारत
- पत्रावली
- मेरा जीवन तथा ध्येय

विस्तृत सूचीपत्र के लिए लिखिए :

रामकृष्ण मठ

धन्तोली, नागपुर– ४४० ०१२

श्रीमती गंगा देवी, जयप्रकाश नगर, छपरा (बिहार) द्वारा प्रकाशित एवं
श्रीकांत लाभ द्वारा जनता प्रेस, नया टोला, पटना – ४ में मुद्रित।